श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल वंचनकर ।

वर्ष १३ | गौराब्द ४८१, मास— हृषीकेश २८, वार—वासुदेव
रविवार, ३१ भाद्र, सम्वत् २०२४, १७ सितम्बर, १९६७ | संख्या ३-४

श्रीहिन्दोलन-लीला-वर्णनम् (पूर्वार्द्धम्)

(श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ति-ठक्कुर विरचितम्)

उर्द्ध्वोर्द्ध्वोरु श्यामशाखा सहस्रैः पीतैः पुष्पैः स्यन्दमानैर्मरन्दैः ।
शम्पाम्भोद-श्रीजयिन्यां विशन्तौ नीपाटव्यां रेजतुस्तौ लसन्तौ ॥१॥

वन शोभा का निरीक्षण करते-करते श्रीराधा और श्रीकृष्ण कदम्ब-काननमें जाकर विराजमान हुए। उस कदम्ब काननमें क्रमशः उर्द्धोर्द्धस्थित श्यामवर्ण सहस्र-सहस्र शाखाओं के ऊपर पीतवर्ण असंख्य विकसित पुष्पोंसे मकरन्दका वर्षण होनेके कारण ऐसा जान पड़ता था मानो विद्युतयुक्त जलधर की शोभाको जय किया हो ॥१॥

मध्ये तस्या या मणिकुट्टिमाल्यो द्राघीयस्यः कृष्णमुद्वप्रभूताः ।
त बिन्दन्तेऽहर्निशं शीधुवृष्टि जाग्रत्या सत्यालिपाल्यैव पाल्याः ॥२॥

उस कदम्ब काननमें जो अत्यन्त दीर्घ कुट्टिम-श्रेणी (अर्थात् कतारयुक्त वेदी या छत्री) है, उसे देखने पर सहृदय व्यक्तिके हृदयमें ऐसा प्रतीत होता है कि मानो यह

श्रीकृष्णके आनन्दका शिखर है। अर्थात् श्रीकृष्णके आनन्दको ही मानो कुट्टिम श्रेणी रूपमें क्यारी बनाकर किसीने रखा है, जिसके ऊपर अनवरत कदम्ब पुष्प मधुवर्षण द्वारा सेचन करते हैं और परम सुन्दर भ्रमर निद्रा त्यागपूर्वक उसकी रक्षा करते हैं ॥२॥

तत्प्राग्तोत्थस्तम्भवद्द्विद्विवृक्षोदञ्चच्छाखाभ्योऽन्यसंश्लेषभंग्या ।
गोपानस्येवाञ्चिताः सन्ति पुष्प प्रालम्बाढ्या मारकत्यो वलभ्यः ॥३॥

प्रत्येक वेदी के दोनों प्रान्तोंसे दो-दो स्तम्भ जैसे कुसुमित कदम्ब-तरु उत्पन्न हुए हैं। उनके परस्परके शाखाओंके सम्मिलनसे वहाँ गोपानसी युक्त मरकत मणि निर्मित तोरण श्रेणीवत् प्रतीयमान होता है एवं स्वभावतः विकसित कुसुम-श्रेणी पुष्प की बन्धनमाला की तरह शोभा पा रहा है ॥३॥

तत्तच्छाखालम्बितद्विद्विशोण श्रीमन्मुक्तामुक्तरज्जुप्रणद्धाः ।
'हिन्दोलाल्यो' द्विद्विसौवर्णपट्टो भाता वातान्दोलिताः सन्ति नित्यम् ॥४॥

उन दो-दो वृक्षों की शाखासे लटकते हुए रक्तवर्ण पट्टसूत्रमें मुक्ता-ग्रथित रज्जुके द्वारा बाँधे गये हिन्दोलिका-श्रेणी अनवरत मन्द पवनसे आन्दोलित हो रही है ॥४॥

पुष्पैः सूक्ष्मश्लक्ष्मचेलान्तरस्थैः वृन्तोन्मुक्तैः किंकरीभिः कलाभिः ।
आच्छन्नास्ताः सौरभैः सोकुमार्यैस्तवाकृष्टुं साधु शक्तिं तदाधुः ॥५॥

किंकरियोंने कला प्रकाशपूर्वक कोमल सुगन्धि पुष्प-समूह उन्मोचनपूर्वक हिन्दोलिका समूहके ऊपर शय्या रचना कर उसके ऊपर सूक्ष्म कोमल वस्त्र द्वारा आच्छादन किया है। वे हिन्दोलिकाएँ सौरभ और सुकुमारताके द्वारा कृष्णको आकर्षण करनेकी शक्ति रखती हैं ॥५॥

मध्ये तासां काञ्चिदञ्चत् पताकां वीक्षारुह्य श्यामधामा विरेजे ।
शोभादेव्या सेव्यमानामिवैतां मन्ये मूर्त्तानन्द एवाध्यतिष्ठत् ॥६॥

हिन्दोलिका-श्रेणीमें से पताकायुक्त एक परमोत्कृष्ट हिन्दोलिका देखकर श्यामधामा श्रीकृष्णने उसके ऊपर आरोहण किया, उससे ऐसा मालूम हुआ कि मानो शोभा देवी द्वारा सेव्यमाना हिन्दोलिका के ऊपर मूर्त्तिमान आनन्द अधिष्ठित हुए हैं ॥६॥

कर्षन् कान्तां हर्षवर्षासु सम्यक् तिम्यन् हस्तालम्बमालम्बमानाम् ।
उत्थाप्यैतां स्वाग्रतो जाग्रतः किं प्रेम्नो वापीमापिपत् स्वाभिमुख्यम् ॥७॥

श्रीकृष्णने हर्ष-वर्षामें सम्यक् प्रकारसे आर्द्र होनेके लिए अर्थात् भींगनेके लिए हस्तावलम्बनकारिणी कान्ताको आकर्षण कर हिन्दोलिकाके ऊपर चढ़ाकर अपनी ओर मुख करके बैठाया। उसे देखनेसे ऐसा जान पड़ता था मानो मूर्त्तिमान आनन्दके सामने विनिद्र प्रेम की वापी (वापिका या बावली) विराजमाना हैं ॥७॥

पुष्पावल्यारात्रिकेणास्यपद्मद्वन्द्वं नीराज्यालिसङ्घः सगानम् ।
हारोष्णीषाद्यापयन् सुस्थितत्वं स्रक्-ताम्बूलस्थासकैः पर्यचारीत् ॥८॥

सखियाँ गान करते-करते पुष्पावलीकी आरात्रिक द्वारा रसिकयुगलके वदनयुगल का निर्मञ्छन कर आरोहण समयमें विपर्यस्त हार, मुकुट आदि ठीक करके माल्य, ताम्बूल, और चन्दनादिके लेपन द्वारा परिचर्या करने लगीं ॥८॥

काञ्च्यामुक्तप्राञ्चि शाट्यञ्चलास्ते किञ्चितपौर्वापार्यंतोऽङ्घ्री विवृत्य ।
कुब्जीभूयादाय दोलां क्षिपन्त्यावास्थातां द्वे दिशौ प्राणसख्यौ ॥९॥

इसके पश्चात् हिन्दोलिकाके दोनों ओर दो प्राणसखी काञ्चीके साथ साड़ीके अंचलको बाँधकर झुलाने के लिए खड़ीं हुईं । वे कुब्जीभूत होकर दोला ग्रहण कर पौर्वापर्य क्रमसे पदयुगोंको फैलाकर दोला को झुलाने लगीं एवं अन्य धन्यतर दो प्राण-सखी करकमलमें पुष्प ताम्बूल बीटिका ग्रहण कर दोनों ओर रहकर दर्शन करने लगीं । वे सखियां वेगके कम होने पर सुयोग प्राप्त कर श्रीराधाकृष्णके मुखमें ताम्बूल प्रदान करने लगीं ॥९॥

अन्ये धन्ये निष्ठतः स्मेक्षमाणे धृत्वा पाण्योः पुष्यताम्बूलवीट्यौ ।
यूनोरास्याम्भोजयोरर्पयन्त्यौ वेगोपान्ते मङ्क्षुलब्धावकाशे ॥१०॥

दूसरी साधुशीता मान्य सखियाँ हिन्दोलन उत्सवमें आनन्दित होकर हस्तयुगल द्वारा श्रीराधाकृष्णके ऊपर प्रशस्त रागयुक्त पराग वर्षण करने लगीं । उससे उनकी आँखें अपार आनन्द प्राप्त करने लगीं ॥१०॥

आल्यो मान्याः प्रेमवन्या इवान्याः पर्वशीलाः सर्वतः साधुशीलाः ।
हस्तोदस्तैः शस्तरागैः परागैश्चक्रुर्वृष्टिं दृष्टिमाप्य हृष्टिम् ॥११॥

गगनमण्डलमें देवियाँ श्रीराधाकृष्णकी ऐसी हिन्दोलन लीला देखकर अपने भाग्य की प्रशंसा करतीं हुईं इस प्रकार कहने लगीं—"अहो ! आज हमारा कैसा सौभाग्य है कि जिसके कारण श्रीराधामाधव की अद्भुत हिन्दोल-लीला को हम देख रही हैं ॥११॥

देव्यस्तिष्ठं मानयन्त्यः स्वदिष्टं तौ पश्यन्तः स्यन्त्य एवाखिलाधिम् ।
जातस्तम्भा अप्यसम्भाविताशा दिव्यातेनुः पुष्पवर्षं सतर्षम् ॥१२॥

उनकी श्रीकृष्णके साथ विहार की अभिलाषा होने पर भी गोपीदेह की अप्राप्ति के कारण उस आशाकी सिद्धि होनेकी सम्भावना न रहने पर भी श्रीराधाकृष्णके दर्शन से सभी दुःख दूर हुए। वे स्तम्भित होकर भी दिव्य पुष्पों की वर्षा करने लगीं ॥१२॥

तत्सङ्गिन्यो विप्रुषो वृष्यमाणा हृष्यन्मेधैस्तन्मरन्दत्वमापुः ।
रामाराजेरङ्गसङ्गात्तदीयैर्मुक्तावृन्दैरन्यविन्दन्तमैत्रीम् ॥१३॥

जिस समय देवियाँ पुष्प वर्षण कर रहीं थीं, उस समय गगनस्थ मेघ भी परमानन्दयुक्त होकर जिस जलकणोंका वर्षण करने लगे, वे पुष्पों के साथ मिलकर मकरन्दत्व प्राप्त हुए, और पश्चात् श्रीकृष्ण-प्रेयसीगणोंके अङ्गों पर गिरकर उनके मुक्ता भूषणोंके साथ मित्रता प्राप्त किया; अर्थात् वे जल बिन्दु व्रजनारियोंके मुक्ताभूषणके निकट मुक्ता की तरह प्रतीत होने लगे ॥१३॥

जृम्भोदञ्चत् सौरभभ्रातमाद्यद् भृङ्गश्रेणीस्तोत्रभाजा मुखेन ।
गीतैर्नीतैर्माधुरीं साधुरीति द्यामच्छाद्य द्योतते स्मालिपाली ॥१४॥

हिन्दोला के ऊपर श्रीराकृष्णको देखकर सखियाँ वीणादि यंत्र के बिना केवल मुख से जो सुमधुर गान करने लगी, वह गान सुरलोक तक व्याप्त हो गया। गान करते करते बीच-बीचमें उनको जो जम्भाई निकालती थी, उससे उनके श्रीमुखको असामान्य सौरभ निकलती थी। भ्रमरगण उसके आकृष्ट होकर श्रीमुखके निकट गुञ्जार करने लगे। उसको देखनेसे ऐसा मालूम होता था मानो भ्रमरगण श्रीव्रजसुन्दरियोंके श्रीमुखारविन्द की स्तुति कर रहे हैं ॥१४॥

नृत्यं भेजुर्हारताटङ्कमाल्यान्यातोद्यत्वं किङ्किणीनूपुराद्याः ।
वक्त्रे स्मित्वा सभ्यतामाददाते यूनोर्दोलानन्दचन्द्रे प्रवृद्धे ॥१५॥

श्रीराधाकृष्णके दोला-विहारके कारण आनन्दचन्द्र क्रमशः अतिशय वृद्धि प्राप्त होने पर उनके (श्रीराधाकृष्णके) हार, ताटङ्क, और माल्यादि नाचने लगे और किङ्किणी, नूपुर आदि नृत्योपयोगी वाद्य बज उठे और उस समय उन दोनोंके मुखमें मन्दहास्य विकसित हुआ ॥१५॥

अन्योन्याङ्गप्रोच्छलत्कान्तिसिन्धोर्वीचोव्रातामन्दहिन्दोलिकासु ।
प्राप्तान्दोलन्योन्य-नेत्रारविन्द श्रीसन्दोहैराढ्यतामापुराल्यः ॥१६॥

इस प्रकार श्रीराधाकृष्ण हिन्दोलाके ऊपर झूलते समय श्रीराधाकृष्णके तात्कालिक प्रोच्छलित कान्ति सिन्धुकी तरङ्गवृन्द रूप अमन्द हिन्दोलिकाके ऊपर परस्परके नयन-कमल दोलने लगे, जिसके श्रीसमूहसे सखियोंने आढ्यता प्राप्त किया अर्थात् दोलन-समयमें परस्परके कान्ति दर्शन जनित आनन्दके कारण श्रीराधाकृष्ण की अतिशय शोभा देखकर सखियोंने असीम आनन्द प्राप्त किया ॥१६॥

इत्थं चेतस्त्वेतयोर्दोलयन् यत् कामो वामोऽत्यन्तरायं न चक्रे ।
लीलाशक्तेरेव तत्र प्रभावः कोऽप्योजस्वी हेतुरित्याहुरार्याः ॥१७॥

जिस प्रकार दोनोंके कान्तिसिन्धुके तरङ्गरूप हिन्दोलिकाके ऊपर परस्परके नयन परस्पर दोलाने लगे, उसी प्रकार लीलाके प्रतिकूल काम दोनोंके मनको पुनः पुनः दोलाकर भी हिन्दोलन लीलामें लेशमात्र भी विघ्न नहीं कर सके। लीला शक्तिकी अनिवर्चनीय कोई प्रभाव ही इसका कारण है ॥१७॥

दोलारज्वालम्ब शाखे स्व-लौल्यादेतौ चञ्चत् पञ्चशाखाग्रगाभिः ।
पुष्पाढ्याभिः पल्लवालीभिरिष्टैः सेवेते स्मामोदनैर्वीजनैः किम् ॥१८॥

जिस तरुशाखा-युगलमें दोलारज्जु बन्धा हुआ था, वे ही दोलावेगसे चञ्चल होकर शाखाग्रवर्त्ती कुसुमयुक्त पत्र-श्रेणीरूप सुगन्धि व्यंजनके द्वारा श्रीराधाकृष्णकी सेवा करने लगे ॥१८॥

तद्वत् पत्राल्यन्तरानन्तशिल्पप्रोतान् अत्र चञ्चलान् माल्य-खण्डान् ।
यन्नैर्भृङ्गानाशकन् यद्भ्रमन्तस्तत्रागुञ्जन् केवलं सापि शोभा ॥१९॥

उस शाखास्थित पत्रके बीच-बीचमें बहुशिल्प द्वारा गूँथे हुए माल्यखण्ड हिन्दोलिकाके साथ झूलने लगे। भृङ्गगण उन्हें पकड़नेके लिए चेष्टा करके भी पकड़ नहीं पा रहे थे। वे केवल चञ्चल माल्यखण्डके साथ गुञ्जार करते-करते भ्रमण करने लगे। उससे एक अनिर्वचनीय शोभा हुई ॥१९॥

(क्रमशः)

———

श्रीरूपानुग भजन-पथ

मैं एक नितान्त अयोग्य जीव हूँ। अयोग्य होने पर भी मुझमें कृष्णकृपाको ग्रहण करनेकी आकांक्षा है। जिनकी जिस परिमाणमें अयोग्यता है, उतनी ही उनके प्रति भगवानकी कृपा वर्षित होती है—"दीनेरे अधिक दया करेन भगवान्।'

भगवानका श्रीरूप दर्शन करनेके लिये हमें रूप विशिष्ट होनेकी आवश्यकता है। यदि हमें उनके सर्वमोहन रूपको दर्शन करनेकी इच्छा है, तो हमें श्रीरूपानुग होना पड़ेगा—उससे वे प्रीति प्राप्त करते हैं। श्याम श्यामा का रूप देखते हैं और श्यामा श्यामका रूप देखती हैं—दोनों उत्तरोत्तर वर्द्धमान परस्परके रूपका दर्शन करते हैं। यदि हम गुणी हैं, तो हम भगवानके गुणोंका भी अनुभव कर सकते हैं।

श्रीरूप गोस्वामीजीने कहा है—

"अखिलरसामृतमूर्त्तिः प्रसृमरुचिरुद्ध तारकापालिः।
कलितश्यामा ललितो राधा प्रेयान् विधुर्जयति ॥"

श्यामा, ललिता और श्रीमती राधा एक दूसरेसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। उसी प्रकार श्यामाकी अनुगा, ललिताकी अनुगा और श्रीराधाकी अनुगा एक दूसरेसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। यदि हमें रूपकी सेवामें वैसा आनुगत्य हो, यदि उत्तरोत्तर हमारा सौन्दर्य वृद्धि होता है, यदि हम सर्वसौन्दर्याकर श्रीश्याम-सुन्दरको हमारा उत्तरोत्तर अप्राकृत सौन्दर्य दिखला सकते हैं, तब हम भी उनके सौन्दर्यको दर्शन करने का सुयोग पा सकेंगे।

वर्त्तमान कालकी अनर्थमय अवस्थामें दण्डकारण्य ऋषियोंकी तरह रामचन्द्रजीके सौन्दर्यको भी दर्शन करनेका अधिकार हमें नहीं है। हमारा कुरूप कहाँसे आया? हमारे स्वरूपमें तो कुरूप नहीं है। बाहरके अनर्थोंने ही हमारे अपने सुरूपको आवृत किया है। हमारे जिस रूपको प्रदर्शनपूर्वक हम कृष्णचन्द्रका प्रीतिविधान करेंगे, हमारा वह रूप वर्त्तमान अवस्था में आच्छादित है।

प्रेमभक्ति साधारणी शुद्धभक्तिसे श्रेष्ठा है। भगवानके श्रीनाम-रूप-गुण-लीलाको प्राप्त करनेके लिए एक उपाय है, किन्तु मैं उसीके लिए अयोग्य हूँ। श्रीगौरसुन्दरने अपने ४८ वर्षके प्रकटकालमें स्वयं भजनीय वस्तु होकर भी भक्तोंका विचार ग्रहण किया था। किस प्रकार जीव भगवद्भजन राज्यमें अग्रसर हो सकते हैं, यह उन्होंने सम्यक् रूपसे दिखलाया है। आप लोग उस आदर्शके द्वारा भजन-पद्धतिको जानने में समर्थ हुए हैं, किन्तु मेरी अयोग्यता ही बड़ो भरोसा है और एक भरोसा है—'आमार प्रभुर प्रभु श्रीगौरसुन्दर।'

श्रीरूपानुगगणोंका करना है—हमारे प्रभु ही श्रीरूप हैं। मैं जितना भी अयोग्य क्यों न होऊँ, तथापि दास्य नामक मेरा एक कार्य है। श्रीरूपानुग श्रील नरोत्तम ठाकुर कहते हैं—

"श्रीरूपमञ्जरी पद, सेइ मोर सम्पद,
सेइ मोर भजन-पूजन ।
सेइ मोर प्राण-धन, सेइ मोर आभरण,
सेइ मोर जीवनेर जीवन ॥
सेइ मोर रसनिधि, सेइ मोर वांछा-सिद्धि,
सेइ मोर वेदेर धरम ।
सेइ व्रत, सेइ तप, सेई मोर मंत्र-जप,
सेइ मोर धरम करम ॥
अनुकूल हबे विधि, से-पद हइबे सिद्धि,
निरखिब ए दुइ नयने ।
से रूप माधुरीराशि, प्राण कुवलयशशी,
प्रफुल्लित हबे निशिदिने ॥
तूया अदर्शन अहि, गरले जारल देही,
चिर दिन तापित जीवन ।
हा हा प्रभु करो दया, देह मोरे पदछाया,
नरोत्तम लइल शरण ।"

मैं अयोग्य होने पर भी परम भाग्यवान हूँ! पूर्व वैष्णवोंने अपने कार्यका परिचय दिया है। जब मैं श्रीरूपानुगाभिमानियोंका सेवक हूँ, तब श्रीरूपानुगगणोंका पदानुसरणरूप मेरा एक कर्त्तव्य है। श्रीरूपानुगगण प्रचारक हैं । श्रीगौरसुन्दरकी वाणी और आज्ञाका मैंने श्रवण किया है—

"पृथिवीते आछे जेत नगरादि ग्राम ।
सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम ॥"
"जारे देखो तारे कह कृष्ण उपदेश ।
आमार आज्ञाय गुरु हइया तार एइ देश ॥"
इहाते ना बाधिबे तोमार विषय तरङ्ग ।
पुनरपि एइ ठाईं पाबे मोर सङ्ग ॥"
भारतभूमिते हैल मनुष्य जन्म जार ।
जन्म सार्थक कर करि' पर उपकार ॥"

जगतमें मायाकी चर्चा प्रबलरूपमें चल रही है और हरिकथाका बड़ा दुर्भिक्ष है । हरिकथाके श्रवण या कीर्त्तनकी ओर जनसाधारणका उत्साह प्रायः नहीं है। इन्द्रियसुखमें आसक्त होनेसे 'परम धर्म' का आचरण न होगा अथवा इन्द्रिय सुखको नष्ट करने पर भी 'परम धर्म' का आचरण सम्भव नहीं है—

भागवतके (११।२०।८) श्लोकमें—

"न निर्विन्नो नातिसक्तो भक्तियोगस्य सिद्धितः ।"

अर्थात् भगवानकी भक्ति अधिक वैराग्य से भी नहीं होगी या कम वैराग्यसे भी नहीं होगी। परन्तु युक्त वैराग्यके द्वारा ही भगवानकी भक्ति सम्भव-पर है ।

जिन सभी महापुरुषोंने इसके पूर्व आप लोगोंके निकट हरिकथाका कीर्त्तन किया था उनकी योग्यता मेरी अपेक्षा अत्यन्त अधिक है। मैं कृष्णेतर विषय कार्यमें अत्यन्त व्यस्त हूँ । मैंने गुरुदेवके निकटसे जिन सब बातोंका श्रवण किया है उन्हींको आप लोगोंके निकट कहने का प्रयास करता हूँ। परन्तु वे सभी बातें आप लोगोंके कार्यमें नहीं आती, और केवल आप लोगोंका समय ही नष्ट होता है।

इस जगतमें विमुख जीवोंके भाग्य-दोषके कारण भगवानके नाम-रूप-गुण-लीलादि अप्राप्य हुए हैं।

उनको प्राप्त करनेका सहज उपाय श्रीरूपगोस्वामी जीने बतलाया है—नामाश्रयकी ही नितान्त आवश्यकता है। नामाश्रय द्वारा ही क्रमशः भगवानके रूप गुण लीलादिकी स्फुर्त्ति होती है। उसी श्रीरूपके प्रिय शिष्य श्रील जीव गोस्वामीजी कहते हैं—

"प्रथमं नाम्नः श्रवणमन्तःकरणशुद्ध्यर्थमपेक्ष्यम्। शुद्धे चान्तःकरणे रूपश्रवणेन तदुदययोग्यता भवति। सम्यगुदिते च रूपे गुणानां स्फुरणं सम्पद्येत, सम्पन्ने च गुणानां स्फुरणे परिकरवैशिष्ट्येन तद्वैशिष्ट्यं सम्पद्यते। ततस्तेषु नामरूपगुणपरिकरेषु सम्यक् स्फुरितेषु लीलानां स्फुरणं सुष्ठु भवतीत्यभिप्रेत्य साधनक्रमो लिखितः। एवं कीर्त्तनं स्मरणयोश्च ज्ञेयम्।"

श्रीनाम ही प्रेमको कलिकास्वरूप है। वे क्रमशः विकशित और पूर्णविकशित होकर रूप, गुण, परिकरवैशिष्ट्य और लीलादिके रूपमें प्रकाशित होते हैं। एवं वस्तु-सिद्धिके समय स्वरूपविलासका प्रदर्शन करते हैं।

श्रीनामग्रहणको छोड़कर और दूसरा साधन पथ नहीं है। भक्तिसन्दर्भमें कहते हैं—"यद्यप्यन्या भक्तिः कलौ कर्त्तव्या, तदा कीर्त्तनाख्या भक्ति संयोगेनैव कर्त्तव्या।" 'नाम' करते-करते अनर्थनिवृत्ति होगी—'नामापराध' करते-करते अनर्थनिवृत्ति नहीं होती। अनर्थनिवृत्ति होने पर भगवानके रूप-गुण परिकरवैशिष्ट्य और लीला शुद्धचित्तमें स्वयं प्रकाशित होते हैं। उस समय हम उन्नतोज्ज्वलरसप्रार्थी होकर 'भक्तिरसामृतसिन्धु' और 'उज्ज्वल नीलमणि' पाठ करनेका सम्यक् अधिकार प्राप्त कर सकेंगे।

बिल्वमंगल ठाकुर श्रीकृष्णकर्णामृतमें श्रीकृष्ण का रूप वर्णन किया है—

"मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोर्मधुरं मधुरं वदनंमधुरम्।
मधुगन्धि मृदुस्मितमेतदहो मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्॥

अखिलरसामृतसिन्धु श्रीकृष्णका नाम एकबार मधुर है। श्रीविग्रह दोबार मधुर है, मुख मण्डल तीनबार मधुर है और मन्द-हास्य चारबार मधुर है। श्रीकृष्णका चारबार मधुर यह हास्य तुरीय प्राप्य वस्तु है।

गोपीजनवल्लभको—श्रीरूप गोस्वामीजीके आराध्य श्रीराधागोविन्दको हम कई समय जड़-जगतके किसी खण्डित वस्तुके समान समझकर अपराध कर बैठते हैं। नामापराधके कारण 'नाम' नहीं होता और 'नाम' नहीं होनेके कारण प्रेमोदय भी नहीं होता और कृष्णका वह चारबार मधुर हास्य भी देख नहीं पाते। जिससे हमारा अपराध नहीं हो, इसके लिये हमें अपने गुरुदेवसे दश अपराधोंको जानना आवश्यक है। अनवधानतारूप करालवदन असुर हमें गुरु अवज्ञारूप भयङ्कर सागरमें निमज्जित कर देता है। तब नाम ग्रहण आकाशकुसुमकी तरह हो जाता है। जिनकी प्राकृत बुद्धि है, वे ही नामग्रहणमें यत्न नहीं करते। श्रीरूप गोस्वामीजीने अपने उपदेशामृतमें कहा है—

'स्यात् कृष्णनामचरितादि सिताप्यविद्या-
पित्तोपतप्तरसनस्य न रोचिका नु।

किन्त्वादरादनुदिनं खलु सैव जुष्टा
स्वाद्वी क्रमाद्भवति तद्गतमूलहन्त्री ॥"

जिस प्रकार पित्तोपतप्त-रसनामें मिश्री अच्छी नहीं लगती, उसी प्रकार अनर्थयुक्त व्यक्तिको भी 'श्रीनाम' अच्छा नहीं लगता एवं श्रीनाम-भजनमें आग्रह नहीं होता।

श्रीनाम ग्रहणको छोड़कर हमारे लिये दूसरा कोई कर्त्तव्य नहीं है। अनर्थयुक्त अवस्थामें नाम ग्रहण संभव नहीं है। अधिकांश स्थलमें 'नामा-पराध' और दैवात् कभी-कभी 'नामाभास' हो सकता है। अनर्थमुक्त होनेके लिए सर्वप्रथम चेष्टा करनी चाहिए। भगवानको निष्कपटभावसे पुकारने से ही जीवोंको अनर्थ-निवृत्ति होती है—दूसरा कोई उपाय नहीं है।

"हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥"

जिस प्रकार बन्ध्याके निकट पुत्रकामना करना निष्फल है, उसी प्रकार मेरे निकट भी फल पानेकी आशा दुराशामात्र है। आप लोगोंके मनोरंजनकी बात मैं आप लोगोंके निकट कह नहीं सकता। आप लोग कृपा करें, जिससे मैं किसी दिन आप लोगों की सेवा-प्रवृत्ति देखकर धन्य हो सकूँ।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(परमहंस-स्वरूप)

१—सहज परमहंस कौन हैं ?

"स्वरूपसिद्ध भक्त ही 'सहज' परमहंस हैं।"

—चै. शि. ६।४

२—गौर लीला और पौराणिक युगके सहज परमहंसके कौन उदाहरण हैं ?

"श्रीवास पण्डित, श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि, श्रीरामानन्द आदि भगवत्पार्षदगण, * * सभी ही सहज परमहंस हैं। प्राचीन कालमें ऋभु आदि कई व्यक्तियोंका गृहस्थाश्रममें ऐसा पारमहंस्य देखा जाता है।"

—च. शि. ६।४

३—परमहंसोंका क्या स्वरूप है ? उनके शास्त्र क्या हैं ?

"जिन सभी व्यक्तियोंमें दिव्यचक्षु हैं, वे उन्हें (परमहंसोंको) समन्वययोगीके रूपमें जानते हैं। जो व्यक्ति अनभिज्ञ, या कोमलश्रद्ध हैं, वे उन्हें संसारासक्त समझते हैं। कभी-कभी उन्हें भगवद्विमुख भी समझ सकते हैं। सारग्राही व्यक्ति स्वदेशीय विदेशीय सर्वलक्षणसम्पन्न सारग्राही व्यक्तिको अनायास ही जान सकते हैं, उसका परिच्छद (वस्त्र), भाषा, उपासना-चिह्न और व्यवहार सभी

भिन्न-भिन्न होने पर भी वे परस्परको भाई-बन्धुके रूपमें सहज ही सम्बोधन कर सकते हैं। ये सभी व्यक्ति ही परमहंस हैं और पारमहंसी संहितारूप श्रीमद्भागवत ही उनका शास्त्र है।"

—'उपक्रमणिका' कृ. स.

४—परमहंस क्या शास्त्रोंके शासनाधीन हैं या विधि वाध्य हैं?

"उच्च सोपानमें स्थित महापुरुष निम्न सोपानस्थ जिन सभी नियमोंका पालन करते हैं, वह केवल उनका स्वेच्छा-विलास मात्र है।"

—'निवमाग्रह', स. तो. १०।१०

५—परमहंस किनका सङ्ग वर्जन करते हैं?

कर्मधर्मसापेक्ष भक्त और कर्मजड़ व्यक्तिमें बहुत भेद है। कृष्णभक्ति शून्य कर्मी की तो बात ही नहीं हैं। कर्मधर्मसापेक्ष भक्त शुद्धभक्तिके आश्रित होकर वैष्णवसेवा-कीर्त्तन-व्यवहारादि करते हैं। हृदयमें कर्म-सम्बन्धमें निरपेक्ष और व्यवहारमें भक्तिके अनुकूल जानकर वर्णाश्रमधर्म स्वीकार करते हैं। यद्यपि नित्य नैमित्तिक कर्म अनेक समय में भक्तिके बाधक होते हैं तथापि स्वच्छन्दसे निष्पाप होकर शरीरयात्रा-निर्वाहके लिए वे नित्य नैमित्तिक कर्ममें यथायोग्य यत्न करते हैं। इसलिये कृष्ण. भक्ति साधनमें वे सर्वदा निरपेक्ष हैं। किन्तु कर्मजड़ व्यक्ति मन ही मन कर्मको ही निस्तार होनेका उपाय समझकर कृष्ण सम्बन्धी कार्यमें आत्मभाव का अनुभव नहीं करते। कृष्णके सुख-दुःखमें उदासीन होकर लोगोंको जड़मय कर्मधर्म शिक्षा देते हैं। वैदिक होकर भी निरपेक्ष पक्वयोगीकी निन्दा करते हैं और अपने सिद्धान्तको वैष्णव-सिद्धान्त कहकर लोगोंकी बुद्धिका नाश करते हैं। मूर्ख व्यक्ति उन्हें वैष्णव-सिद्धान्त समझकर मोह प्राप्त होते हैं और निरपेक्ष पक्वयोगीको लघुबुद्धिके द्वारा वितर्क कर अपनी बुद्धिका नाश करते हैं। पक्वयोगीके हृदय निष्ठाको वैदिक व्यक्ति जान नहीं सकते। इसलिये कर्मजड़ शिक्षकको महापुरुष समझकर वैसे ही व्यवहारादि करते हैं। परमहंस महात्मा उन्हें अवैष्णव जानकर उनका सङ्ग नहीं करते।"

—आ. वि. भा. टी.

६—इस जगतमें सबसे अधिक धन्य कौन हैं?

"इस जगतमें चिद्चिद् विचार-सम्पन्न परमहंस भक्त ही धन्य हैं। भक्तगण पण्डित हैं। क्योंकि उन्होंने जड़जगतके मोह सलिलका पार पाया है। भक्त ही गुणी हैं; क्योंकि मायाके कुण्डित (बाधायुक्त) सत्वरजस्तमोगुणको भेदपूर्वक उन्होंने विशुद्ध सत्वगुण प्राप्त किया है। भक्त ही सुखी हैं; क्योंकि जड़ जगतके सुख-दुःखको अतिक्रम कर उन्होंने व्रज का चित्सुख प्राप्त किया है। भक्त निर्भय हैं; क्योंकि भूत-भविष्यदात्मक कालको अतिक्रम कर वे शुद्ध गोलोकवासी हुए हैं। भक्त युग-युगमें जीवित रहें और हतभाग्य माया-पीडित व्यक्तियोंको दर्शन, स्पर्शन, और आलापनादि द्वारा कृतार्थ करें।"

—आ. वि. भा. टी.

प्रचार और प्रचारक

१—निर्जन भजनानन्दी और हरिकीर्त्तनकारी प्रचारकमेंसे कौन जगतके अधिक उपकारी हैं?

"रुचिक्रमसे जो सभी भक्त साधुओंका धर्म

आचरण करते-करते भजनानन्दमें मग्न होकर प्रचार कार्यका अनादर करते हैं, उनकी अपेक्षा प्रचार कर्त्ता जगतका अधिक उपकार करते हैं।"

—'आचार और प्रचार' स. तो. ४।२

२—किनमें प्रचारक-योग्यता है ?

"शुद्धभक्ति क्या वस्तु हैं, उसका ज्ञान प्राप्तकर जो व्यक्ति निरपराधसे नाम करते हैं, उनमें ही प्रचारक-योग्यता है।"

—'श्रीमद्गौराङ्ग-समाज', स. तो. १०।११

३—क्या केवल वाचालता रहनेसे ही प्रचारक हुआ जा सकता है ?

"प्रचार कार्यका भार भजन करनेवाले व्यक्तियों को अर्पण करना ही अच्छा है। केवल वाचालता रहनेसे ही कोई गौर-शिक्षा प्रचारक नहीं हो सकते।"

—'श्रीमद्गौराङ्ग-समाज,' स. तो. १०।११

४—प्रचारकोंके लिए नामापराध-तत्त्व जानना क्यों आवश्यक है ?

"प्रचारकोंको सभी नामापराधोंको अच्छी तरहसे जानना चाहिए। उसके जानने पर वे उपयुक्त नाम-प्रचारक होंगे। नामप्रचारके साथ साथ नामापराधसे सर्वदा सावधान रहनेका उपदेश देना होगा, नहीं तो प्रचारक व्यक्ति स्वयं ही नामापराधी हो पड़ेंगे।"

—'श्रीमद्गौराङ्ग-समाज', स. तो १०।११

५—शुद्ध प्रचार कार्यमें किस-किस वस्तुकी आवश्यकता है ?

"शुद्धरूपसे प्रचार करनेके लिये पहले नाम-ग्रहणकी शुद्धता, दूसरे प्रचारककी शुद्धता और तीसरे ग्राहकोंकी शुद्धताकी आवश्यकता है। नाम-ग्रहणकी शुद्धता यही है कि प्रचारित नाम भगवल्लीलासूचक और ज्ञान-कर्मादि गन्धशून्य होगा।"

—'श्रीश्रीनाम-हट्ट,' वि. प. १ म खण्ड

६—प्रचारकोंको आचारवान् होनेकी आवश्यकता क्यों है ?

"साधुओंके धर्माचरणका नाम 'आचार' है। उस धर्मको जगतमें दूसरे जीवोंके निकट प्रचार करनेका ही नाम 'प्रचार' है। आचार या प्रचार-कार्य करनेके लिये पहले साधुओंको धर्मकी शिक्षा करना आवश्यक है। किन्तु शिक्षा करते-करते स्वयं आचरण करनेके पहले ही कोई-कोई व्यक्ति प्रचार कार्य करने लगते हैं, उससे ठीक-ठीक फल प्राप्त नहीं होता। * * स्वयं आचरण न कर धर्म प्रचार करनेसे जगतमें नाना प्रकारके उत्पात उपस्थित होते हैं।"

—आचार और प्रचार,' स. तो. ४।२

७—क्या स्मार्त्ताचारी व्यक्ति भक्ति तत्त्वके प्रचारक नहीं हो सकते ?

"कोई-कोई व्यक्ति स्वयं शुद्धभक्तिका आचरण नहीं करते, बल्कि कर्म-काण्डान्तर्गत स्मार्त्त-सम्मत आचरण करते हैं, वे जिस भक्ति-तत्त्वका उपदेश देते हैं, वह सर्वशास्त्र विरुद्ध है। प्रचार करनेके लिए पहले स्वयं आचरण करना अत्यन्त आवश्यक है।"

—'आचार और प्रचार', स. तो ४।२

८—प्रचारककी शुद्धताकी क्या आवश्यकता है?

"प्रचारककी शुद्धताकी अत्यन्त आवश्यकता है। नाम-गान सर्वत्र ही होता है, किन्तु नामसे आकृष्ट होकर उसे सुनने जाकर प्रचारकोंकी अशुद्धता देखकर दुःख होता है। या तो ग्रामकी पीड़ा-निवृत्तिके लिए नाम किया जा रहा है नहीं तो कुछ लोग मृत्युके भयसे नाम कर रहे हैं। ऐसे भुक्ति और मुक्ति पिपासा दूषित हृदयसे जो नाम निकलता है, वह प्रतिबिम्ब नामाभास है। उससे जीवोंको नित्य-मंगल प्राप्त नहीं हो सकता। यदि विषयिपति और व्रजक - विषयि व्यक्ति उस प्रकारके स्पृहासे रहित हो, तो उनके द्वारा शुद्धनाम प्रचार होगा। यदि वे अर्थादि पानेकी आशासे अथवा नाम प्रचार कर दूसरेके निकट प्रतिष्ठा पानेकी आशासे कार्य करते हैं, उससे नाम-हट्टका उद्देश्य सफल न होगा।"

—'श्रीश्रीनामहट्ट', वि. प. श्यवर्ष

९—प्रचारकों उपदेश भोगोन्मुख जीवोंसे हृदय में विकृत रूपसे प्रतिफलित होनेके कारण क्या उसके लिये शुद्ध प्रचारक उत्तरदायी हैं ?

"The reformers out of their universal love and anxiety for good work, endeavour by some means or other to make the thoughtless drink the cup of salvation, but the latter drink it with wine and fall into the ground under the influence of intoxication; for, imagination has also the power of imaking a thing what it never was Thus it is that the evils of nunneries and the corrption of Akhras proceeded. No, we are not to scandalise the Saviour of Jerusalem and the Saviour of Nadia for these subsequent evils. Luthers, instead of critics are what we want for the correction of those evils by the true intrepretation of the original precepts."

—The Bhagabat : Its Philosophy, Its Ethics and Theology.

"अर्थात् प्रचारक अपने सर्वदेशीय प्रेम और अच्छे कामके लिए व्याकुलताके कारण जिस किसी प्रकारसे विचारहीन व्यक्तियोंको उद्धार करनेकी चेष्टा करते हैं, परन्तु ऐसे विचारहीन व्यक्ति उसे मदकी तरह समझकर नशेमें चूर होकर गिर पड़ते हैं। क्योंकि कल्पनामें ऐसी शक्ति है कि वह जो चीज नहीं है, उसे भी बना डालती है। इसी कारणसे महिलाश्रमोंकी बुराईयाँ तथा अखाड़ोंकी मलिनता बढ़ने लगे। इन सब बुराईयोंके लिये ईसा मसीह या श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीको दोष नहीं दे सकते। इसके लिए हमें आलोचक नहीं, बल्कि सुधारकोंकी आवश्यकता है जो इन बुराइयोंको मूल सिद्धान्तोंकी ठीक-ठीक व्याख्या कर सुधार सकें।"

१०—श्रीनवद्वीप धाम प्रचारिणी सभाका क्या इतिहास है ?

"१८९४ सालके जनवरी महीनेमें अर्थात् २ रे

माघ, रविवारको इस सभाकी नीव डाली गयी। उस समय वहाँ समस्त कार्यकुशल व्यक्ति उपस्थित थे। उन्होंने मेरे द्वारा सब बातें समझाने पर एक-मत होकर श्रीमायापुरमें सेवा प्रकाश करनेकी अनुमति दी। श्रीश्रीनवद्वीप धाम प्रचारिणी सभा नामक सभाका संस्थापन हुआ। इस सभामें जन-साधारणके निकटसे अर्थ संग्रह कर यथारीति श्रीमूर्त्ति-सेवाकी व्यवस्था की। उस अर्थ द्वारा श्री-मायापुरमें भूमि खरीद कर तृणाच्छादित घर बनाए गए और वहाँ श्रीगौराङ्ग-विष्णुप्रियाकी प्रतिष्ठा हुई। ८ चैत्रको महामहोत्सवके साथ श्रीमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की गई। असंख्य यात्रियोंने उस समारोहमें भाग लिया। मनोहरसाही कीर्त्तन, शोभा यात्रा और नाम-संकीर्त्तन विशेष आनन्दके साथ सम्पन्न हुए।"

—'भक्तिविनोदठाकुरजीका आत्मचरित्र'

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ-सार

(श्रीकृष्ण-सन्दर्भ १८)

श्रीभगवानके धाम समूह उनके स्वरूप-विभूति हैं। इसलिए ऊपर और नीचे-दोनों ओर प्रकाशित होनेके कारण उभयविध रूपमें प्रसिद्ध हैं। किन्तु श्रीभगवानके नित्य अधिष्ठान के कारण दोनों ओर प्रकाशमान धामका एकत्व जानना चाहिये अर्थात् एक ही धाम उर्द्ध में (परव्योममें) और अधोभाग में (पृथ्वीमें) विराजित है। जिस प्रकार भगवान एक साथ ही बहुतसे स्थानोंमें प्रकाश पा सकते हैं, उनके धामके सम्बन्धमें उसी प्रकार जानना चाहिए। भगवानके एक साथ ही बहुतसे स्थानों प्रकाश होने की बात इस श्लोकमें बतलायी गयी है—

"चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक्।
गृहेषु द्वयष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत्॥"

श्रीकृष्णने एक ही समयमें पृथक्-पृथक् गृहमें एक ही विग्रहसे सोलह हजार महिषियोंके साथ विवाह किया। यह जानकर देवर्षि नारद भगवान की योगमायाके वैभव देखनेके लिए द्वारका गये। यदि कृष्ण सौभरि मुनिकी तरह कायव्यूह रचना कर विवाह करते, तो नारदजीको विस्मय नहीं होता। नारदजीने बहुतसे मुनियोंके कायव्यूह रचना के दर्शन किये थे और स्वयं भी वैसा करनेमें समर्थ थे। किन्तु श्रीकृष्णने कायव्यूहका विस्तार नहीं किया, बल्कि अपनी प्रकाश मूर्तिको प्रकटित किया। दोनों में यह भेद है कि कायव्यूहमें बहुतसे देह होने पर भी सभी देहोंकी क्रिया एक होती है अर्थात् सौभरि मुनिने जिस कायव्यूह द्वारा पचास मूर्त्तियाँ

रचना की थी, उसमें एक मूर्त्तिके हाथ हिलाने पर उनपचास मूर्त्तियाँ भी हाथ हिलातीं थीं। किन्तु प्रकाशमूर्त्तिमें वैसा नहीं होता। प्रकाशमें एक देह होता है, किन्तु क्रिया अनेक प्रकारकी होती है। वैसा देखकर ही नारद विस्मित हुए। श्रीगोलोक परव्योममें अवस्थित हैं, उसीका प्रमाण गोकुल भौम वृन्दावनमें विराजित है। श्रीकृष्ण-विरही श्रीउद्धवजीने समाधिमें यह अनुभव किया था। श्रीविदुरजी द्वारा श्रीकृष्ण-चरित्रके सम्बन्धमें प्रश्न करने पर श्रीउद्धवजीने विरह व्याकुल अवस्थामें दो दण्ड तक मौनावलम्बन किया था। उसके पश्चात् परमानन्दमें पूर्ण होकर दृश्यमान जगतमें धीरे-धीरे पुनरागमन किया था।

शनकैर्भगवल्लोकान्नृलोकं पुनरागतः।
विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रत्याहोद्धव उत्स्मयन्॥
(भा. ३।२)

भागवतके वचनानुसार मौनावलम्बनकालमें श्रीउद्धवजीने श्रीकृष्णलोकमें कृष्ण लीलाका दर्शन किया था। अन्यथा विच्छेद व्याकुल उद्धवजीका चित्त प्रफुल्ल नहीं होता। तब भौम मथुरादिमें श्रीकृष्णलीला अप्रकट हुई थी। इसलिए उद्धवजीने उस धामसमूहके प्रकाशविशेषमें ही श्रीकृष्णलीला का दर्शन किया था। श्रीशुकदेवजी कहते है—

विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्यासो दिवं गतः।
तदाविशत् कलियुगं पापे यद्रमते जनः॥
यावत् स पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः।
तावत् कलिर्वै पृथिवीं पराक्रान्तं न चाशकत्॥

जबसे भगवान विष्णुके श्रीकृष्णाख्य भानुने द्युलोकमें प्रवेश किया, तबसे कलिने जगतमें प्रवेश किया है। उसी कलिके कारण सभी लोग पापोंमें रत हुए हैं। जब तक रमापतिने अपने चरण-कमलों द्वारा पृथिवीका स्पर्श किया था, तब तक कलि पृथिवीमें स्थित जीवोंके प्रति प्रभाव विस्तार करनेमें समर्थ नहीं हुआ। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् होनेके कारण सूर्यस्थानीय हैं। गुणावतार विष्णु उनके किरणस्थानीय हैं। जब उन कृष्णने द्युलोक अर्थात् प्रापञ्चिक लोकके अगोचरमें स्थित मथुरादि के प्रकाशविशेषरूप वैकुण्ठमें गमन किया, तब पृथिवीमें कलिका प्रवेश हुआ था। यहाँ मथुरा, द्वारका, और वृन्दावन धामके त्रिविध प्रकाशकी बात पायी जाती हैं—अप्रकट प्रकाश, हमारे दृश्यमान वर्त्तमान प्रकाश और प्रकट प्रकाश। श्रीकृष्ण जिस प्रकाशमें जाकर विहार करते हैं, वह अप्रकट प्रकाश है। वह प्रकाश पृथिवीस्थ होने पर भी अन्तर्द्धान शक्तिद्वारा पृथिवीको स्पर्श न कर विराजित हैं। अतएव पाञ्चभौतिक शरीरधारी हम वृन्दावनस्थित महाकदम्बादि को भी वैसा दर्शन नहीं करते। श्रीकृष्णके इस प्रकाशको भी वैसा पृथिवीको स्पर्श कर विद्यमान देख नहीं पाते।

हम जैसे प्रापञ्चिक व्यक्ति जिस प्रकाशका दर्शन करते हैं वह दृश्यमान प्रकाश है। वह पृथिवी को स्पर्श कर विराजित है। पाञ्चभौतिक देहधारी हम जिस प्रकार कदम्बादि वृक्षोंका दर्शन करते हैं, वैसे ही श्रीकृष्णलीला भी पृथिवीको स्पर्श कर विराजित है। बहुतोंका विश्वास है कि हम जिस मथुराधामको देख रहे हैं वह वास्तविक नहीं हैं एवं किसी समय यहाँ धाम अवतीर्ण हुए थे। किन्तु

बात ऐसी नहीं है। श्रीकृष्ण मायातीत वस्तु हैं। वे सच्चिदानन्द विग्रह होकर भी जिस प्रकार जगत में प्रकट विहार करते हैं और नरलीला हेतु मानव-धर्मको कई अंशोंमें ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार धाम भी मायातीत एवं चिन्मय हैं। श्रीकृष्ण जिस प्रकार नरलीला अङ्गीकार करते हैं, वैसे ही धाम समूह भी लीलावशतः पार्थिव धर्म अङ्गीकार करते हैं। प्रकट प्रकाशमें जब श्रीकृष्ण प्रकट विहार करते हैं, तब वे इस धामका स्पर्श करते हैं। इस धाम स्पर्शद्वारा पृथिवीका स्पर्श होनेके कारण उन्होंने 'पृथिवी स्पर्श किया था' ऐसा कहते हैं। वर्त्तमानमें वे पृथिवी स्पर्श न कर विहार करते हैं। इसलिए 'यावत् न पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः" श्लोक में यह अभिप्राय व्यक्त हुआ है। केनोपनिषद्में कहते हैं—

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति
चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥

किनके द्वारा प्रेरित होकर मन अपने विषयके प्रति दौड़ता है, किनके द्वारा युक्त होकर प्राण गमनागमन करता है, किनके द्वारा प्रेरित होकर सभी लोग शब्दका उच्चारण करते हैं एवं कौनसे देवता चक्षु कर्णादिको अपने-अपने कार्यमें नियुक्त करते हैं? इस प्रश्नके उत्तरमें कहा गया है—

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्
वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥

जो कर्णके कर्ण, मनके मन, प्राणके प्राण और चक्षुके चक्षु हैं अर्थात् देह-इन्द्रियादिके जो प्रवर्त्तक हैं, उन्हें जान सकने पर इहलोकसे परलोकमें गमन कर अमृतत्वको प्राप्त कर सकते हैं। सबसे अन्तमें कहते हैं—"यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति" अर्थात् जो इस ब्रह्म विद्याको जानते हैं, वे सभी पापोंको दूर कर अनन्त अति सूक्ष्मात्मक स्वर्गमें प्रतिष्ठा लाभ करते हैं। यहाँ 'स्वर्ग' कहनेसे वैकुण्ठलोकका बोध होता है। क्योंकि चौदह भुवनस्थ स्वर्गलोक अनन्त या नित्य नहीं है और प्रलयमें उसका ध्वंस होता है।

पूतनाकी सद्गतिके सम्बन्धमें भागवतमें कहा गया है—

'यातुधान्यापि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम्।"
(भा. १०।६।२७)

राक्षसी पूतनाने जननियोंके गम्य स्वर्गलोक को लाभ किया था। अन्यत्र कहा गया है "लेभे गतिं धात्र्युचितां" अर्थात् उसने धात्रीयोग्या गति प्राप्त की। कृष्णकी धात्रियाँ किलिम्बा और अम्बिका जिस स्थानमें (गोलोकमें) अवस्थान करते हैं, वहाँ गमन किया था। उपनिषदोंमें कहा गया है स्वर्ग क्या है और ब्रह्म क्या है?—इस प्रश्नके उत्तरमें)—वह ब्रह्म नारायण है और वैकुण्ठका वन-लोक स्वर्ग है। द्वारकाके नित्यत्वके सम्बन्धमें यह श्लोक पाया जाता है—

द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत् क्षणात्।
वर्जयित्वा महाराज श्रीमद् भागवतालयम् ॥

नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान् मधुसूदनः ।
स्मृत्यादेवाशुभहरंसर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥
(भा. ११।३१।१६)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! समुद्रने श्रीकृष्ण द्वारा परित्यक्त द्वारकापुरीको क्षणकालमें डूबो दिया, किन्तु श्रीभगवानके गृहको कोई हानि नहीं हुई। उस आलयमें भगवान् मधुसूदन नित्य अवस्थान करते हैं । ऐसा स्मरण करनेपर सभी प्रकारके अशुभोंका नाश होता है और वह स्थान सर्वमङ्गलोंका मङ्गलस्वरूप है। 'हरिणा त्यक्ता'—इसका दो प्रकारका अर्थ है । हरिणा+त्यक्ता और हरिणा+अत्यक्ता। परवर्त्ती श्लोकमें कहा गया है कि हरि नित्य सन्निहित हैं। इसलिए भगवदालयके चारों ओर खाईकी तरह समुद्र प्लावन जानना चाहिए। मथुराके सम्बन्धमें कहा गया है—

"राजधानी ततः साभूत् सर्वयादवभूभुजाम् ।
मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ॥"

जहाँ हरि नित्य सन्निहित हैं, वह मथुरा समस्त यादव राजाओंकी राजधानी हुई थी।

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचिः ।
पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥
(भा. ३।८)

देवर्षि नारदजीने ध्रुवसे कहा था—हे वत्स ! यमुनाके तटमें परम पवित्र मधुवन है, जहाँ श्रीहरिका नित्य निवास है। तुम उसी मथुरामें गमन करो। (क्योंकि मथुराके अत्यन्त निकटमें मधुवन है)।

श्रीवृन्दावनके नित्यत्वके बारेमें कहा गया है—

पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिङ्ग-
गूढ़ पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ।
गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं
विक्रीड़याञ्चति गिरिन्द्र-रमार्चिताङ्घ्रिः॥

कंसके रङ्गमण्डपमें श्रीकृष्णको दर्शन कर माथुर रमणियाँ कहने लगीं—अहो ! व्रजभूमि परम पुण्यवती हैं । क्योंकि मनुष्य चित्तमें गूढ़ परमपुरुष श्रीकृष्णने विचित्र वनमाला विभूषित होकर बलराम के साथ गो-पालन करते हुए नाना प्रकारकी क्रीड़ाओं द्वारा वहाँ विहार किया है । शिव, लक्ष्मी आदि उनके चरणकमलोंकी पूजा करते हैं ।

'अञ्चति' पदद्वारा श्रीकृष्णकी गोकुलमें नित्यस्थिति जानी जाती है । 'साक्षादुपदेशस्तु श्रुतिः' अर्थात् साक्षात् उपदेशको श्रुति कहते हैं। वह अन्य वाक्यकी अपेक्षा बलवान है। यहाँ 'अञ्चति' क्रिया द्वारा साक्षात् सम्बन्धमें ही श्रीकृष्णका व्रज-विहार कहा गया है। भगवानकी कृपासे माथुर-पुरस्त्रियोंके मुखसे यथार्थ वाणी निकली है । 'तब वे व्रजमें विहार कर रहे हैं'—ऐसे वर्त्तमान कालके प्रयोगके द्वारा अप्रकटलीलामें भी व्रजमें स्थिति विहारादि व्यक्त हुआ है ।

वृन्दावनकी लीलाके दो स्थान हैं—वृन्दावन और गोलोक। वृन्दावनमें प्रकट-अप्रकट दोनों लीलाओंकी ही स्थिति है और गोलोकमें केवल अप्रकट लीलाकी स्थिति है। इसलिए जो लीला प्रापञ्चिक जगतमें अभिव्यक्त नहीं होती, उसकी अभिव्यक्ति गोलोकमें होती है। वृन्दावनका प्रकाश-

विशेष ही गोलोक है । इसलिए श्रीवृन्दावनमें ही गोलोकाख्य प्रकाशविशेषका गोपोंने दर्शन किया था।

लोकपाल वरुणके अदृष्टपूर्व ऐश्वर्य और वरुण लोकवासियोंको श्रीकृष्णको प्रणाम करते देखकर गोपराज नन्दजीने विस्मित होकर वह बात ज्ञानियों के निकट वर्णन किया था। उन सभी गोपोंने श्रीकृष्णको ईश्वर समझकर उत्सुकतापूर्वक यह सोचा था कि भगवान् निश्चय ही हमें अपनी सूक्ष्म-गति प्रदान करेंगे । सर्वज्ञ भगवानने गोपोंके वैसे संकल्पको जानकर उसकी सिद्धिके लिए कृपापूर्वक प्रकृतिके पारमें स्थित गोपोंके लोक (गोलोक) का दर्शन करवाया था । अक्रूरने पहले जहाँ ब्रह्मदर्शन किया था, उस ब्रह्महृदमें नन्दादि गोपोंने श्रीकृष्ण द्वारा नीत, मग्न और उद्धृत होकर ब्रह्मके रूपका दर्शन किया था । श्रीकृष्णको मूर्त्तिमान् वेदसमूह द्वारा स्तुत होते देखकर वे विस्मित और परमानन्दित हुए थे। वृन्दावनके किस स्थानमें गोलोकका दर्शन करवाया था ?—ब्रह्महृद अर्थात् अक्रूरतीर्थ। जहाँ श्रीअक्रूरजीने श्रीकृष्णका स्तव किया था। वृन्दावनमें सर्वत्र ही गोलोक दर्शन कराना सम्भव होने पर भी अक्रूरतीर्थका माहात्म्य विशेषरूपसे दिखलानेके लिए गोपोंको उस हृदमें मग्न कराया था ।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीमद्भागवतमें माधुर्यभाव

(वर्ष १३ सं. २, पृष्ट ४२ से आगे)

रासलीलाके मधुमय संयोगके अनन्तर व्रज-बालाएँ किसी प्रकार व्रजराजके निकटसे अपने अपने गेह चली तो गईं, परन्तु उनका मन रास-रसिककी रूपी माधुरीमें सर्वतोभावेन ऐसा अटक गया कि जिसका दूर करना असम्भव हो गया। उनके अहोरात्रके क्षण श्रीकृष्णके लीलाओंके वर्णन गुणगानमें व्यतीत होने लगे । उन्हें अपने परिवार तथा संसारके किसी भी पदार्थसे मोह नहीं रहा। उनके नयन, श्रवण, मन, वाणी,—सभी किशोर शेखरके आसपास ही घूमने लगीं। मनसा, वाचा-कर्मणा व्रजराजको उपासना ही उनका ध्येय बन गया।

संध्याके समय जब विपिनसे नटवर, नटवर वेष काछे अपने साथियों गोपोंके साथ गायोंको आगे किये हास परिहास करते गोधूलिसे समाच्छादित हुए व्रज लौट कर आते तो व्रजरमणियाँ अपने दिन के बढ़े विरह तापको श्रीकृष्णकी झाँकीरूपी आनन्दसिन्धुमें अवगाहन कर शान्त करतीं और संसारकी सारी विद्याओंको भूल जातीं। रात्रिका उन्हें भान ही नहीं रहता ।

परन्तु जब दिनका आरम्भ होता, व्रजेन्द्र सदा की भाँति धेनुओं और वत्सको चरानेके हेतु वनमें अपने साथियोंके साथ जाते तो गोपियोंका मन उन्हींमें लगा रहता। वे गोपालकी विविध क्रीड़ाओं को गाँ करती हुई दिवसका यापन करतीं।

किसी स्थान पर इकट्ठी होकर बैठ जातीं, घर का कामकाज विसर जातीं और आपसमें मिलकर कहने लगतीं। साथमें नन्दरानीको भी बिठा लेंती।

बामबाहुकृतवाम कपोलो-
वल्गित भ्रु रधरार्पितवेणुम्।
कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं
गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः॥
व्योमयान वनिताः सहसिद्धै-
र्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः।
काममार्गण समर्पिताचित्ताः
कश्मलं ययुरपस्मृत नीव्यः॥
हन्त चित्रामबलाः श्रृणुतेदं
हारहास उरसिस्थिर विद्युत्।
नन्दसूनुरयमार्तजनानां
नर्मदो यर्हि कूजित वेणुः॥
वृन्दशो वृजवृषा मृगगावो
वेणु वाद्यहृत् चेतस आरात्।
दन्तदष्टकवला धृतकर्णा
निद्रितालिखित चित्रमिवासन्॥
(भा. १०।३५।२,३,४,५)

हे सखियों! वाम वाहु पर वाम कपोल धरे हुए कृष्ण जब अधर पर धरी हुई बंशीके सातों स्वरोंके सात छेदों पर कोमल अंगुलियाँ धरते और हटाते हुए भौंह नचाकर बजाते हैं, तब उस बंशी की मनोहर ध्वनिको सुनकर अपने पतियोंके साथ विमानों पर बैठी हुईं, सिद्धोंकी स्त्रियाँ परम विस्मयको प्राप्त होती हैं एवं हृदयमें कामके बाण लगनेसे लज्जापूर्वक मोहित हो जाती हैं। उनको इतना भी देहका ध्यान नहीं रहता कि कमरसे खिसक कर गिरने वाले वस्त्रको संभालें।

सुन्दरियों! एक और विचित्र बात सुनो। जिनके वक्षस्थलमें मनोहर मुसकानकी झलक हार के समान शोभायमान होती है एवं चञ्चला लक्ष्मी स्थिर दामिनीके समान विराजमान हैं, वह आर्त बन्धु कृष्णचन्द्र बंशी बजाते हैं तब उस बंशीकी विचित्र ध्वनिने जिनके मन हरण कर लिये हैं वे झुण्डके झुण्ड व्रजवनवासी गऊ, मृग, बैल आदि पशु चारों ओर घासके कोरोंको वैसे ही मुखमें दबाए कान उठाए जैसे सो रहे हों इस प्रकार आँखें बन्द किये चित्रलिखितसे खड़े रह जाते हैं।

बर्हिणस्तबकधातुपलासै-
र्बद्धमल्ल परिबर्ह विडम्बः।
कर्हिचित् सबल आलि स गोपै-
र्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः॥
तर्हिभग्नगतयः सरितो वै
तत्पदाम्बुजरजोऽनिल नीतम्।
स्पृहयतीर्वयमिवा बहुपुण्याः
प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः॥
भा. १०।३५। ६-७

सखियों! मयूरोंके पंख, गेरु आदि चित्रविचित्र

धातु एवं नव पल्लवोंसे नटवर वेष बनाये कृष्णचन्द्र बलभद्र एवं अन्यान्य गोपोंके साथ वनमें खड़े होकर गौओंको अपने निकट बुलाते हैं, तब वायु द्वारा लाये गये उनके चरणरज पानेकी लालसासे नदियों की भी गति रुक जाती है। अवश्य ही उन नदियोंने भी हमारे ही समान पुण्य किया है। क्योंकि प्रेम वश उनकी तरङ्ग रूप भुजाएँ केवल एक दो बार डोलती हैं। फिर निश्चल हो जाती है, उनकी इच्छाएँ सफल नहीं होतीं।

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्यः
आदिपुरुष इवाचलभूतिः।
वनचरो गिरीतटेषु चरन्ती-
र्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि॥
वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं
व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः॥
प्रणतभारविटपा मधुधाराः
प्रेमहृष्टतनवः ससृजु :स्म॥

(भौ. १०।३५ ८-९)

हे आलियों! अनुचर गोपगण (या देवगण) जिनके विचित्र पराक्रम का वर्णन करते हैं, वह आदिपुरुष नारायण के समान अचल लक्ष्मी संयुक्त बनचारी व्रजचन्द्र जब पर्वत के शिखरों पर चर रही गौवोंको बंशी बजाकर बुलाते हैं, तब फूल और फलों के भारसे जिनकी शाखाएँ झुक रही हैं, वे बनके वृक्ष-लता आदि वनस्पति समूह प्रेमसे पुलकित शरीर होकर मधु-धाराओं की वर्षासे मानो अपनेमें आत्मारूप विष्णु की व्यापकता सिद्ध करते हैं।

विविध गोपचरणेषु विदग्धो
वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः।
तव सुतः सति यदाधरबिम्बे
दत्तवेणुरनयत् स्वरजातीः॥
स वनशस्तदुपधार्य सुरेशाः
शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः।
कवय आनतकन्धरचित्ताः
कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः॥

भा- १०।३५।१४, १५

हे यशोदाजी! गोपोंकी विविध क्रीड़ाओंमें निपुण तुम्हारे पुत्र कृष्णचन्द्र जिस समय स्वयं सीखी हुई निषाद-ऋषभ आदि अनेक स्वर जातियों को अधरबिम्ब पर धरी बांसुरी बजाकर अलापते हैं, उस समय हे नन्दभामिनि! इन्द्र, महादेव, ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवगण ह्रस्व, मध्यम, दीर्घ भेदोंके उतार चढ़ावमें आलापे हुए गीत को शिर झुकाकर कान लगाकर एकाग्र चित्तसे सुनते हैं एवं सर्वज्ञ होकर भी उस गीतके तत्वको निश्चित रूपसे न जान सकने के कारण मोहको प्राप्त होते हैं।

निज पदाब्जदलैर्ध्वजवज्र-
नीरजाङ्कुश विचित्रललामैः।
व्रजभुव शमयन् खुरतोदं
वर्ष्म धुर्य गति रीड़ित वेणुः॥
व्रजति तेन वयं सविलास-
वीक्षणार्पित मनोभव वेगाः।
कुजगति गमिता न विदामः
कश्मलेन कबरं बसनं वा॥

भा. १०।३५।१६, १७

हे सखियों ! नन्दराजकुमार जब ध्वजा, वज्र कमल, अंकुश, आदि विचित्र चिह्नोंसे युक्त अपने श्रीचरणों द्वारा व्रजभूमि की गोखुर प्रहार जनित व्यथा मिटाते हुए गजराज की भाँति-भाँति अपनी अनोखी चालसे बांसुरी बजाते चलते हैं, उस समय उनकी लीला विलासपूर्ण चित्तवन हमारे हृदयमें काम को जगा देती है, हम कामदेवके वेगसे वृक्षोंके समान जड़ दशाको प्राप्त हो जाती हैं। और मोहके कारण खुले हुए वस्त्र या वेणी बाँधना भी भूल जाती हैं।

कुन्ददाम कृत कौतुकवेषो
गोप गोधन वृतो यमुनायांम् ।
नन्दसूनुरनघे तव वत्सो
नर्मदः प्रणयिनां विजहारः ॥
मन्दवायु रुपवात्यनुकूलं
मानयन् मलयज स्पर्शेन ।
बन्दिनस्तमुपदेवगणा ये
वाद्यगीत बलिभिः परिवव्रुः ॥
भा. १०।३५।२०, २१

हे नन्दरानी ! हे शुद्ध चरित्रवाली व्रजरानी ! कुन्द माला पहने और कौतुक उपजाने वाला वेष बनाये तुम्हारे पुत्र नन्दनन्दन कृष्ण जिस समय गोप और गौओंको साथ लेकर उनके बीचमें यमुना तटपर प्राणी जनोंको आनन्द देते हुए बिहार करते हैं उस समय मलय पर्वतमें उत्पन्न चन्दनके समान जिसका स्पर्श शीतल है, वह सुगन्धित पवन उनका सम्मान करता हुआ अनुकूल होकर मन्द-मन्द डोलता है एवं बन्दीजनों की भाँति स्तुति पाठ करते हुए गन्धर्व आदि उपदेव गण बाजे बजाते गाते और फूलों की वर्षा करते हैं उस समय कितना भला लगता है !

वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो
वन्द्य मान-चरणः पथि वृद्धैः ।
कृत्स्न गोधन मुपोह्य दिनान्ते
गीतवेणुरनु गेडितकीर्तिः ॥
उत्सवं श्रमरुचापि दृशीनां-
मुन्नयन् खुररजश्छुरितस्रक् ।
दित्सयेति सुहृदाशिष एष
देवकीजठर भूरुडु राजः ॥
(भा. १०।३५।२२-२३)

सखियों ! कृष्ण प्यारे हम व्रजवासियोंके और गौवोंके परम हितकारी हैं। उन्होंने गौवों की और हमारी रक्षाके लिये गोवर्द्धन पर्वत उठा लिया और उसे सात दिन तक वैसे ही लिये खड़े रहे। अब दिन बीत गया। जान पड़ता है कि सब गोधन एकत्र करके हम सुहृद जनों की कामना पूर्ण करने लिये प्यारे कृष्ण आ रहे हैं। वह सुनो, गोपगण पीछे-पीछे उनकी अपूर्व कीर्ति का गान करते आरहे हैं। और वंशी की मधुर ध्वनि भी सुन पड़ती है। अवश्य ही ब्रह्मा आदि देवगण मार्ग में चरण बन्दना करते जाते हैं। इसीसे प्यारे का अब तक हमको दर्शन नही मिला है।

मद विघूर्णितलोचन ईषन्-
मानदः स्वसुहृदां वनमाली ।

बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं
मण्डयन् कनककुण्डल लक्ष्म्या ॥
यदुपतिर्द्विरदराजविहारो
यामिनीपति रिवैष दिनान्ते ।
मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं
मोचयन् व्रजगवां दिनतापम् ॥
(भा. १०।३५। २४, २५)

सखियों ! वह देखो, गौवोंके खुरोंसे उड़ी हुई धूलिसे धूसरित माला पहने देवकीके पुत्र गोकुल चन्द्र पधार गये हैं । अहो ! यद्यपि इस समय बन बिहारसे थके हुए आ रहे हैं, तो भी इस समय की मनोहर छबिसे नेत्रोंको अत्यन्त आनन्द दे रहे हैं ।

बनमाली की आखें मदके कारण इस समय कुछ चढ़ी हुई हैं । दोनों कपोल कनक कुण्डलों की कान्तिसे सुशोभित हो रहे हैं । अतएव पके हुए बेर के फलके समान मुख मण्डल पीतवर्ण हो रहा है । प्यारे कृष्ण अपने सुहृद् जनों को कृपा दृष्टिसे सम्मानित करते हुए गजराज की ऐसी चालसे आ रहे हैं । देखो, देखो ! व्रजवासी और गौओंके दुरन्त दिन तापको दूर करते हुए प्रसन्न वदन यदुपति सायंकाल में चन्द्रमा के समान हमारे समीप ही आ रहे हैं ।

इस प्रकार अपने जीवन सर्वस्वमें आसक्तमना भाग्यशालिनी गोपियाँ प्रियतम के चरित्र गाती और चर्चा करती हुईं दिनको बिताती थीं ।

(क्रमशः)

श्रीकृष्ण

(दावानल-पान-लीला)

शुचि सरिता से शतदल पाकर
सोये सानंद गोसह गोपति ।
मृगसिर की मनु तपन सहन कर,
प्राप्त पुष्य-पावस मानस अति ॥१॥

पड़े रहे गम्भीर नींद में
निरखि सुसुप्ताक्य उनकी को ।
मानो प्राण विहंग संग नहिं
उड़ा देह तजिकर उनकी को ॥२॥

उसी काल विकराल विशद अति
शब्द हुआ प्रलयंकर बन में ।
वज्र गिरा हो कुध्र-जाल पर
अथवा मरुत् उठे हों बन में ॥३॥

चट-चट-चट अति तुमुल घोषकर
गिरने लगे वृक्ष कानन के ।
धूम्र शिखा-गम्भीर सिन्धु में
बढ़ने लगे धूम घन-घन के ॥४॥

हरित, अरुण, सित, नील पुष्प सब
हुए एक ही श्याम वर्ण के ।
मानो जग के विविध जन्तुगन
समा गये मुख कुम्भकर्ण के ॥५॥

कीर, कपोत, कोक, केकीकुल
लगे छोड़ने बन हो व्याकुल।
श्वान मृगाल सिंह सुरभिगन
लगे भागने कर धुनि व्याकुल ॥३॥

चकित किंकर्त्तव्यमूढ़ से
गो-पालक बालक सँग जागे।
देख भयावन वन-कृशानु को
चित चाही आसा में भागे ॥७॥

भागे आगे जा न सके तब
जागे, कृष्ण-शरण में लागे।
तीर-तपन तनुजा के पाके
पाके क्षत मनु धूम्रध्वजा के ॥८॥

आशा-भग्न, लग्न मन कण्टक
मग्न होन लागे रविजा जल।
किन्तु द्विविधि है मृत्यु नरक-दा
जल में गिरि अथवा वह्नि-जल ॥९॥

सोच यही कर मोह प्राण कर
लागे कृष्ण उचारण करने।
सभी चाहते किन्तु कठिन है
कृष्ण नाम लगता जब मरने ॥१०॥

हे कृष्णे ! बलराम-भ्रात हे !
नन्दनंदन घनश्याम निराले।
यशुदा-अंक-मयंक-अंक हे
दानव-कानन-वह्नि कराले ॥११॥

कंसासुर प्रेषित इस व्रज को,
करने दहन गहन कानन सा !
दावानल धररूप अनलका
आया है प्रभु झंझानिल सा ॥१२॥

उसने अपने काल दण्ड सम
फाड़ करालानन विशालको।
ग्रसित किया है सभी दिशा में
अम्ब-निम्ब-जम्बू-तमाल को ॥१३॥

सूख गये हैं सरित्-सरोवर
लुप्त हुई सुषुमा सब जलकी।
व्याकुल हुए वारिचर खेचर
खबर नहीं आरसित थलकी ॥१४॥

जाकर कहाँ, बचावें निज को
हो आतुर वे लगे भागने।
प्राण-पखेरू उड़े किन्हीं के
जड़ से जड़ता लगी जागने ॥१५॥

थी रजनी रजनीश नहीं था
प्रिया छोड़कर पिता भवन में।
विरह-दग्ध-मानस बिन्दु से
अगणित उडुगन छाये गगन में ॥१६॥

उसकी विरह कथा को लखकर
रहे शान्त जड़वत सब प्राणी।
नयनों में थी गिरा नहीं या
नेत्र हीन मनो थी वाणी ॥१७॥

खगमृग मनुष दनुज देवता
सभी अचल से पड़े दीखते
मानो शोक-सिन्धु में उनके
मग्न हुए भग्नाश दीखते ॥१८॥

सहज तपन छायी नभवन में
ज्वर जर्जर जर सभी दीखते।
दीरघ दाघ निदाघ दग्ध हो
दाह-वेलि से सभी दीखते ॥१९॥

बिन जल जलकर हम हैं मरते
अड़ते प्रान आंड़-दर्शन से।
त्राहि-त्राहि मधुसूधन ! मोहन !
हमें बचाओ गह्वर बन से ॥२०॥

लगी हुई अटवी में अग्नि
वज वींथीं वीरुध में लागी।
पाकर बात प्रकोप निशा में
चतुर्गुणी होकर वह जागी ॥२१॥

यह कृशानु-सरि सी व्रज वन में
करने लगी मग्न अपने में।
अथवा कुञ्ज-निकुञ्ज निगलने
रसना काल निकाली बन में ॥२२॥

अथवा स्वयं वीर-रस-भटकी
चन्दहास बिन चन्दा चमकी।
बिन पावस बादल-दल अन्तर
वज्र सदृश दामिन है दमकी ॥२३॥

सुनकर आर्त्त पुकार जनोंकी
करुणानिधि करुणाकर प्रकटे।
सह न सके शोकाग्नि भक्तका
कानन मध्य स्वयं हरि प्रकटे ॥२४॥

जो हरि बिन नयनों के लखता
बिन आनन सब रसका भोगी।
करता घ्राण नासिका बिन हो
बिन रसना वक्ता लड़ योगी ॥२५॥

वही अगुण अनन्त अगोचर
अगम व्यक्त अव्यक्त अनादि।
अन्तर्यामि अजन्मा अविचल
अजित अनन्द अतीत विवादी ॥२४॥

कूद पड़ा उस जातरूप में
रूप छिपाकर निशिचर धाया।
चट लपेटि निज बाहु पाश में
गिरा दिया जब सम्मुख आया ॥२६॥

चढ़ बैठे वक्षस्थल पर हरि
अक्ष फाड़ दीं दावासुर ने।
शान्त हुई अग्नि उस बन की
पायी शान्ति शीघ्र व्रज नरने ॥२८॥

हे मोहन ! माधव। राधा-धव !
चिरजीवी हो नन्दनँदन जय।
गो-पति, गोप-सहायक नायक
गोप-तिया-मुख-कंज-भ्रमर जय ॥२९॥

—शंकरलाल चतुर्वेदी

श्रीकृष्णाविर्भाव

त्वं भक्तियोग परिभावितहृत्सरोज
आसिसे श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥
(श्रीमद्भागवत ३।९।११)

अचिन्त्य, अनन्त वैभवशाली परमानन्दकन्द श्रीहरि कैसे अवतीर्ण होते हैं, किनके हृदयमें उनका निवास होता है, उनकी लीला-माधुरीका कौन आस्वादन कर सकता है—ब्रह्माजीने इन सब प्रश्नों का इस श्लोकमें बड़े ही सुन्दर रूपसे समाधान किया है।

भक्तके हृदयमें ही भगवानका आविर्भाव होता है। भक्तिविमुख अज्ञानी जीव भगवानके स्वरूप को जान नहीं सकते। वे अक्षजज्ञान द्वारा उनको जाननेका प्रयास कर चित् और जड़को एक कर बैठते हैं। असीम वस्तुका ज्ञान असीम तत्त्वके ज्ञाता ही प्राप्त कर सकते हैं। जो व्यक्ति अचिन्य वस्तुको भक्तिद्वारा वशीभूत कर लेते हैं, केवल वे ही इस अनिर्वचनीय वस्तुकी उपलब्धि कर सकते हैं। महाभागवतोंका एकान्त आश्रय ग्रहण कर उनका पदानुसरण करनेसे यह सम्भव है।

श्रीकृष्ण अधोक्षज तत्त्व हैं। उनका धाम, उनका नाम, और उनके परिकर आदि सभी कुछ अप्राकृत हैं। उनकी आविर्भाव लीला भी अप्राकृत है। विशुद्ध हृदयवाले भक्तकी भावनाओंके अनुरूप वे अवतार ग्रहण करते हैं और उस एकान्तिक भक्त को सुखी करने के लिए उसकी मनोनुकूल लीला को प्रकाश करते हैं। भगवान भक्तोंपर सदा अनुग्रह करते हैं। दर्शनकारीके भावनानुसार भगवानका दर्शन होता है। श्रीकृष्णने अपने बड़े भाई बलराम के साथ जब कंसके रङ्ग-मंडपमें प्रवेश किया, तब मल्लगणोंने उन्हें वज्रके रूपमें, मनुष्योंने सुन्दर नरश्रेष्ठ के रूपमें, स्त्री लोगोंने साक्षात् कामदेवके रूपमें, गोपोंने स्वजनके रूपमें, असत् राजाओंने शासनकर्त्ता के रूपमें, नन्द वसुदेवादि माता-पिताने शिशुके रूपमें, कंसने मृत्युके रूपमें, जड़बुद्धियुक्त भक्तिविमुख व्यक्तियोंने विराट वस्तु के रूपमें, योगियोंने परतत्त्वके रूपमें और यादवोंने परदेवता के रूपमें दर्शन किया। इस तरह एक ही श्रीकृष्ण एक साथ १२ रसोंके विषय हुए। इसलिए वे अखिल-रसामृत मूर्त्ति हैं।

भगवत्ताके तारतम्य विचारसे श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ हैं। यज्ञ, कपिल, दत्तात्रेय, वामनादि अवतार ऐश्वर्य भाव-सम्पन्न हैं। इन सब अवतारोंमें नरवत् लीला होते हुए भी ऐश्वर्य भावका आधिक्य है। ऐश्वर्य के कारण नरलीलाका सौन्दर्य प्रकट हो नहीं पाता। इन सब अवतारों में श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि उनमें कुछ अंशों तक माधुर्य विद्यमान है। श्रीरामचन्द्रजी की लीला सम्पूर्ण नरवत् लीला है। जब श्रीरामचन्द्रजीने नरशिशुवत् जन्म ग्रहण किया, तब श्रीदशरथजीने जात कर्मादि किये

और कौशल्याजीने उन्हें स्तन-पान कराया। यहाँ वात्सल्य रस प्रकाशित हुआ है। रामचन्द्रजी अपनी शैशव लीलासे सबको प्रसन्न करते थे। जब श्री दशरथ महाराजके मणिमय आँगनमें राम, लक्ष्मणादि चारों भाई खेलते थे, तब ऐसा प्रतीत होता था मानो एक सुन्दर सरोवरमें चार कमल खेल रहे हैं। रामचन्द्रजी की बाल्य लीला और पौगण्ड लीला से यौवन लीला अधिक मधुर है। कैशोर अवस्थामें वेदाध्ययन, विनय, नम्रतादि द्वारा सबको मुग्ध किया। यौवनमें विवाह, गुरुजनोंका आज्ञा पालन, गुरुजनों की सेवा, प्रजाका मनोरंजन और भक्तोंको संतोष-प्रदानादि बहुत सी लीलाएँ कीं। रामचन्द्रजीका ऐश्वर्य भी अपार है। विश्वामित्रजी के साथ तपोवनमें जाते समय ताड़कादि तथा मारीच सुबाहु आदि अनेक राक्षसोंका क्षणभरमें बध किया। जिस महान शिव धनुषको पाँच हजार वीर पुरुष अति कठिनाई से लाये थे, उसे उन्होंने सब राजाओं के सामने अनायास ही भङ्ग कर दिया।

रामचन्द्रजी की अपेक्षा श्रीकृष्णमें ऐश्वर्य तथा माधुर्य अत्यन्त अधिक हैं। श्रीकृष्णको छोड़कर और किसी अवतारने असुरों को परम गति नहीं प्रदान की। जिस सिद्धलोक को योगी लोग अति कठिनाई से तपस्या कर पाते थे, उस लोकको श्रीकृष्णके हाथ से मरे असुरोंने अनायास ही प्राप्त किया। रावण, कुम्भकर्णादि असुरोंको श्रीकृष्णने ही अन्तमें गति प्रदान की। सर्वमंगलमय भगवानके बहुतसे अवतार होने पर भी श्रीकृष्णको छोड़कर और किसी ने भक्तरूपी लताको प्रेमदान नहीं किया।

श्रीकृष्ण दो रूपोंसे प्रकटित हुए—१) प्राभव विलास वासुदेव या देवकीनन्दनके रूपसे २) स्वयं रूप यशोदानन्दनके रूपसे।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहते हैं—

वैभवप्रकाश जैछे देवकी-तनुज।
द्विभुज स्वरूप कभु, कभु हन चतुर्भुज॥
जे काले द्विभुज, नाम—वैभव-प्रकाश।
चतुर्भुज हैले, नाम—प्राभव-विलास॥
स्वयरूपेर गोपवेश, गोप अभिमान।
वासुदेवेर क्षात्रय वेश, 'आमि क्षत्रिय' ज्ञान॥
सौन्दर्य, ऐश्वर्य, माधुर्य, वैदग्ध-विलास।
व्रजेन्द्रनन्दने इहा अधिक उल्लास॥
गोविन्देर माधुरी देखि वासुदेवेर क्षोभ।
से माधुरी आस्वादिते उपजय लोभ॥

चैतन्यचरितामृत २०।१७५-१७९

देवकीनन्दन श्रीवासुदेव कभी द्विभुज और कभी चतुर्भुज प्रकाश करते हैं। जब वे द्विभुज प्रकाश करते हैं, उसे वैभव प्रकाश कहते हैं, और जब चतुर्भुज प्रकाश करते हैं, उसे प्राभव विलास कहते हैं। श्रीकृष्णका देवकी और वसुदेवके साम्ने चतुर्भुज प्राभव विलास स्वरूपसे प्राकट्य हुआ था। इस स्वरूप की देवकी और वसुदेवने स्तुति की थी। श्री यशोदानन्दन स्वयं रूप हैं। वे द्विभुज गोपवेशधारी हैं और उनका गोप अभिमान है। देवकीनन्दन वासुदेव का क्षत्रिय वेश है और उनका क्षत्रिय अभिमान है। सौन्दर्य, माधुर्य, ऐश्वर्य, विदग्धता आदि गुणोंके कारण यशोदानन्दन श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं।

उनके माधुर्यसे आकृष्ट होकर श्रीवासुदेव भी उस माधुरीको आस्वादन करनेका लोभ करते हैं। प्राभव विलास स्वरूपका आविर्भाव देवकी-वसुदेवके सामने और स्वयंरूपका आविर्भाव श्रीनन्द-यशोदा के पास हुआ। दोनों आविर्भावोंमें अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। प्राभव विलास स्वरूपमें नरलीला विशेष रूपसे प्रकाशित नहीं हुई थी, लेकिन स्वयं रूपसे यही लीला सम्पूर्ण रूपसे प्रकटित हुई थी। वसुदेव देवकी के सामने प्रकटित रूप ऐश्वर्यमय था। इसलिए श्रीशुकदेवजीने कहा—'तमद्भुतं बालकं'। अर्थात् बालक अद्भुत स्वरूपमय था। उसके मस्तकमें स्वर्ण-मुकुट, गलेमें वैजयन्तीमाला और कर्णमें मकर-कुण्डल शोभायमान थे। कटिमें पीतवसन और मेखला थी। हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म थे और चरणोंमें नूपुर थीं। उस समय देवकीजीमें वात्सल्य भाव नहीं जगा। उन्हें ईश्वर ज्ञान प्रबल रूपसे हुआ और वे स्तुति करने लगीं। लेकिन श्रीनन्द-यशोदाके पास जो स्वयं रूपसे आविर्भाव हुआ, वह सम्पूर्ण नरशिशु की तरह था। श्रीकृष्ण ने शिशुके समान रोदन किया था। उस समय यशोदाजी के स्तनोंसे दूध की धारा बहने लगी थी। वे अत्यधिक वात्सल्यसे रोने लगीं थी। अनन्तर श्रीनन्द महाराजने नाड़ीच्छेद आदि जातकर्म करवाये थे। उस समय श्रीनन्द महाराज के महलमें वात्सल्य रस उमड़ने लगा। श्रीकृष्ण की यही जन्म-लीला सर्वोत्तम है। कृष्णकी बाल्य-लीला श्रीरामचन्द्रजी की बाल्य-लीलासे अत्यन्त अधिक माधुर्य पूर्ण है। आज्ञानुवर्त्तिता, अलौकिक वस्तुसे भय, पिता-मातासे डर, अकारण रोदन न करना—यह सब शिशु की स्वच्छन्द गति है। अधिक चंचलता, अलौकिक वस्तुसे निर्भयता, अकारण रोदन करना, आज्ञा का उल्लंघन करना—यह सब शिशुकी अस्वच्छन्द गति है। श्रीकृष्णमें यह सब भाव विशेष रूपसे प्रकाशित हुआ है। शुकदेवजी कहते हैं—

> शृङ्ग्यग्निदंष्ट्र्यहिजलद्विजकण्टकेभ्यः
> क्रीडापरावतिबलौ स्वसुतौ निषेद्धुम्।
> गृह्णानि वक्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ
> शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम्॥
>
> (भा० १०।८।२५)

वे दिव्य शिशुरूपधारी श्रीकृष्ण किसी का निर्देश न मानकर सींगयुक्त पशु, अग्नि, सर्प आदि काटनेवाली प्राणी, अस्त्र आदि पकड़ लेते थे। व्रज गोपियोंके गृहोंसे दही-माखन चुराते थे। माता यशोदासे झूठ बोलते थे। बच्चों को रुलाते थे। इन सब कार्यों द्वारा माधुर्य और अधिक प्रकाशित होता है।

यशोदानन्दन श्रीकृष्ण द्विभुज मुरलीधारी हैं। वे त्रिजगत को मोहित करनेवाले हैं, उनका अपार माधुर्य है और उनका रूप सर्वश्रेष्ठ है। वे नित्यकाल वृन्दावनविहारी हैं। श्रीकृष्ण की बाल-लीलासे पौगण्ड-लीला श्रेष्ठ है और पौगण्ड लीलासे कैशोर लीला श्रेष्ठ है। पौगण्ड-लीलामें उन्होंने गोचारण किया था और सखाओंके साथ नाना प्रकारकी क्रीडाएँ की थीं। कैशोर लीला में गोपियोंके साथ नाना प्रकार के विलास किया था और रासादि लीलाएँ की थीं। देवकी नन्दन वासुदेवमें ये सब

प्रकाशित नहीं हैं। इसलिए स्वयंरूप कृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ हैं। श्रीकृष्ण जैसा माधुर्य और किसी भी भगवानके स्वरूपमें नहीं है। श्रीकृष्ण ही एकमात्र प्रेमदाता हैं। उन्होंने पूतना जैसे राक्षसीको, जो उन्हें मारने आयी थी, धायी की उत्तम गति प्रदान की। ऐसे कृष्णको छोड़कर कौन बुद्धिमान व्यक्ति दूसरे का भजन करेगा ?

यदुवंशमें परम गुणवन्त श्रीदेवमीढ़ नामक एक राजा हुए। उनकी दो पत्नियाँ थीं। एक क्षत्रिय राजकन्या तथा दूसरी वैश्य कन्या। दोनों पत्नियोंसे शूर और पर्जन्य नामके महासत्गुणशाली दो पुत्र हुए। शूरके वसुदेव, देवश्रवा, आनक इत्यादि दस पुत्र सभी बड़े पुण्यात्मा थे। वसुदेवजीके जन्मके समय नगाड़े और नौबत आदि स्वयं ही बजने लगे थे। इसलिये वे आनकदुंदुभी नामसे प्रसिद्ध हुए।

श्रीपर्जन्य गोप नन्दीश्वरमें निवास करते थे। वे बड़े धर्मात्मा थे। उनकी वरीयसी नामकी सुलक्षणा साध्वी पत्नी थी। गोप दंपतिको कई दिनोंतक कोई संतान नहीं हुई। देवर्षि नारदजीके उपदेश गोपराज नित्य श्रीलक्ष्मी-जनार्दनकी उपासना करते थे। उनकी उपासनासे भगवान परितुष्ट हुए और आकाशवाणी हुई—

हे गोपराज ! तुम्हारे यहाँ भविष्यमें ५ पुत्र होंगे तथा सभी पुत्र बड़े गुणवन्त होंगे और मध्यम पुत्र नन्द नामसे प्रसिद्ध होगा। श्रीनन्दका सर्वानन्दस्वरूप एक पुत्र होगा। इसके बाद पर्जन्य गोपके यहाँ सर्वसुलक्षण पाँच पुत्र हुए। उनके नाम थे—उपनन्द, अभिनन्द, नन्द, सुनन्द, और नन्दन। श्रीपर्जन्यगोप वृद्ध होनेसे उन्होंने अपने राज्यका भार मध्यम पुत्र नन्दको सौंप दिया। वे गोपराज नामसे प्रसिद्ध थे। श्रीनन्द महाराजके यहाँ अनेक गोधन और संपत्ति थी। सुमुख नामके एक गोपकी परम सुन्दरी एक कन्या थी जिसका नाम श्रीयशोदा था। श्रीनन्दमहाराजके साथ उनका विवाह हो गया। कुछ दिनोंके बाद श्रीनन्दमहाराज समस्त परिजनोंके साथ गोकुल महावनमें आकर वास करने लगे। वहाँ उन्होंने एक सुन्दर पुरी निर्माण की। श्रीनन्द महाराजके व्यवहारसे उनकी सब प्रजा सन्तुष्ट थी। उनके द्वारा गोप लोगोंकी बहुत उन्नति हुई। महाराज प्रतिदिन श्रीलक्ष्मीनारायणकी सेवा, ब्राह्मणकी सेवा, तथा पिता माताकी सेवा करते थे। उनकी पत्नी श्रीयशोदाजी भी उसी प्रकार पतिका अनुसरण करती थीं। श्रीयशोदाजी बहुत सुन्दरी व बहुत सुकुमारी थीं। उनको सब महारानी कहकर पुकारते थे। श्रीनन्दयशोदाका अपार वैभव था। लेकिन केवल एक ही अभाव था उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। सन्तान नहीं होनेके कारण इतना वैभव व प्रतिष्ठा होने पर भी वे सब कुछ व्यर्थ मानते थे और मनमें बड़ी वेदनाका अनुभव करते थे। समस्त गोप-गोप और प्रजा लोग भी इस कारण बहुत दुःखी थे। श्रीनन्दयशोदा पुत्रके लिये नित्य अनेक व्रत-पूजा भी करते थे। एक दिन दुःखित पत्नीको नन्दराजने आज्ञा दी कि तुम द्वादशी व्रत करो। इस व्रतसे श्रीहरि प्रसन्न होकर हमें पुत्र देंगे। पूर्वयुगमें देवमाता अदितिजीने इसी व्रत द्वारा श्रीवामनदेवको पुत्र रूपमें पाया था। पति की बात सुनकर श्रीयशोदाजी बड़ी प्रसन्न हुईं और

बोलीं—यह व्रत मैं अवश्य करूँगी। श्रीयशोदाजी ने पतिदेवके साथ एक वर्ष तक अखण्डरूपसे यह व्रत किया। व्रत करनेके समय उनको एक बड़ा ही सुन्दर स्वप्न दिखाई दिया— जिसमें भगवान स्वयं आविर्भूत होकर बोले—आप निरन्तर जो पुत्र पानेकी चिन्ता कर रहे हैं वह पुत्र शीघ्र ही पायेंगे। ऐसा कहकर वे अन्तर्द्धान हो गये।

स्वयंरूप श्रीकृष्ण ब्रह्माजीके दिनमें एक बार अपने धाम और परिकरके साथ प्रकट होते हैं। स्वयंरूप श्रीकृष्ण जब अवतार लेते हैं तब दूसरे सब अवतार आकर उनमें मिलते हैं। इस अट्ठाईसवें चतुर्युगके द्वापरयुगके अन्तमें जब स्वयंरूप कृष्ण प्रकट हुए, उसी समय द्वापर युगके अवतार वैभव प्रकाश वासुदेव प्रकट हुए। पृथ्वीका-भार हरण करनेका कार्य स्वयंरूप श्रीकृष्णका नहीं है। क्षीरोद-कशायी विष्णु आविर्भूत होकर भार-हरणका कार्य करते हैं। स्वयंरूप श्रीकृष्ण विष्णु द्वारा ही असुर आदि वध करते हैं। इसी समय युगावतार और कल्पावतार दोनों एक साथ आनेका समय हो गया था। श्रीमद्भागवतमें दोनों अवतारोंका एक साथ वर्णन किया है।

एक समय श्रीनन्द महाराजके दरबारमें सब श्रेष्ठ गोप लोग उपस्थित थे और वहाँ सब मिलकर धर्मकथा कह रहे थे। उस समय एक तपस्विनी उस सभामें आई, उनके साथ एक ब्रह्मचारी और एक ब्रह्मचारिणी थीं। तपस्विनी पौर्णमासी देवी थीं। वे श्रीनारद मुनिकी शिष्या थीं और परम विदुषी थीं। इनके पुत्र श्रीसान्दिपनी मुनि थे। वे अवन्ति नगरीमें रहते थे और यादवोंके पुत्रोंको शिक्षा प्रदान करते थे। उस समय अवन्ति नगरीमें विद्याका केन्द्र था। यह नगरी शिप्रा नामकी पवित्र नदीके तटमें थी। सादिन्पनी मुनिका मधुमङ्गल नामका एक पुत्र तथा नान्दीमुखी नामकी एक पुत्री थी। दोनों पोर्णमासी देवीके साथ वृजमें आये थे और अपनी मातामहीके पास वेद विद्या अध्ययन करते थे तथा उनकी सेवा करते थे। पौर्णमासी देवीने आजीवन वृजवास किया था। वे स्वयं योगमाया थीं। इन्होंने श्राराधागोविन्दके विलास सहायके लिये आजीवन तपस्या की। जब श्रीपौर्णमासी देवीने मधुमंगल और नान्दीमुखीके साथ श्रीनन्दमहाराजीकी सभामें प्रवेश किया तब उनके दिव्य तेजसे सभा उज्ज्वल हो गई। तीनोंके अंगमें उज्ज्वल गेरुआ वसन शोभाय-मान थे। सभासद उनको देखकर अचम्भित हो गये। और मनही मन सोचने लगे कि यह देवी कौन है? कहाँ से आई? क्या यह साक्षात् कैलास-वासिनी योगिनी देवी हैं या और कोई हैं? सबने जल्दी खड़े होकर उनका स्वागत किया। श्रीनन्द महाराजने भी अपना आसन छोड़ उनका अभि-नन्दन किया तथा उनके चरण कमलमें वंदना कर उनकी चरण धूली अपने मस्तकमें धारण किया। महाराजने बड़ी भक्तिके साथ उनका स्वागत किया और सभामें उच्चस्थान पर बैठाया। उनके पासके दो आसनों पर मधुमंगल तथा नान्दीमुखी बैठे।

बादमें श्रीनन्द महाराजने अपनी पत्नी यशोदा जीके साथ गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य द्वारा उनकी पूजाकी और दान दक्षिणा आदि दिये। उनके साथ सब लोगोंने भी भक्तिभावसे पौर्णमासी देवी की वन्दना की। पौर्णमासी देवी बहुत ही प्रसन्न हुई

और अपना हाथ श्रीनन्दमहाराज तथा यशोदाके सिरपर रखकर मंगल आशीर्वाद दिया और हँसते - हँसते बोलीं—मैं श्रीगोपराजका बड़ा वैभव देख रही हूँ। श्रीनन्दमहाराजके घर भविष्यमें जगदानन्दकन्दस्वरूप एक सुन्दर पुत्र होगा। यह परम मधुर वाक्य सुनकर सब लोग आनन्दसे पुलकित होकर बोले "श्रीपौर्णमासी देवीकी जय" इस प्रकार जयध्वनीसे कुछ समय तक वह सभा गूँजती रही और सब कहने लगे कि फिर तो हमारा वृन्दावन वृहद्तीर्थ बन जावेगा। उस समय सब व्रजगोपियोंने श्रीपौर्णमासी देवीके चरणोंमें चन्दन पुष्प तथा कंठमें मूल्यवान फूलोंकी माला और सिर में गंध-पुष्प देकर पूजा की और बोलीं —आज से श्रीपौर्णमासी देवी इस व्रजधामकी उपदेष्टी, गुरु आचार्यानी और योगिनी माता हैं। गोपसभामें बड़ा ही आनन्द उत्सव मनाया गया। और सबको पूरा विश्वास हो गया कि श्रीनन्द महाराजके घर अवश्य एक पुत्र होगा। सब गोपलोगोंने श्रीपौर्णमासीदेवीके लिये श्रीजमुनाके किनारे एक आश्रम बना दिया। उसी दिन श्रीवसुदेवकी पत्नी श्री रोहिणी देवी वृजमें आई थी। क्योंकि मथुरा नगरी में दुष्ट कंसराजा यादव लोगों पर बहुत अत्याचार करता था। इसलिये श्रीवसुदेवने अपनी पत्नियोंको कहीं दूसरे दूसरे स्थानोंमें अपने मित्रोंके घर भेज दिया था।

एक दिन श्रीनारद मुनि कंसराजाकी सभामें आये और बोले—हे कंसराजा! अब देवतालोग बहुत बड़ा षड़यंत्र रच रहे हैं और यादव वंश तथा पाण्डव वंशमें जन्म लेने वाले हैं। इतना कहकर देवर्षि नारद चले गये। यह गोप्य कथा श्रीनारदजी ने कंसराजाको इसलिये कही कि कंसासुर अधिक पाप करें। क्योंकि जब तक पाप अधिक नहीं होगा, तब तक श्रीकृष्ण कंसासुरको मारनेके लिये अवतार नहीं लेंगे और उसका उद्धार नहीं होगा। आत्मदर्शी पुरुषके कोई भी कार्य किसीके अपकार्यके लिये नहीं होते, लेकिन उपकारके लिये ही होते हैं। साधु विश्वबान्धव हैं। श्रीनारदजीका यह वाक्य सुनकर कंसासुर क्रोध कर लाल आँखोंसे गर्जन कर बोले:—हे असुरों! अघ! बक! पूतना! अरिष्ट! तुम कहाँ हो? जल्दीसे आओ और यादव लोगोंको नाश करनेका उपाय करो। वसुदेव व देवकीको अभी कारागारमें बन्द कर दो तथा उनके ६ पुत्रों को मेरे पास ले आओ। मैं अभी खड्गसे उनकी गर्दन काट डालूँगा। यह आज्ञा पाकर तुरन्त सब असुर कोलाहल करते हुए चारों दिशाओंमें चल पड़े। कंसके अत्याचारोंसे यादवलोग डरकर मथुरापुरी छोड़कर अन्य स्थानोंमें अपने मित्रोंके यहाँ छिपकर रहने लगे। कंसने वसुदेव तथा देवकीको कारागारमें बन्दी कर दिया और उनके छः सुन्दर पुत्रोंको एक-एक सिरच्छेद किया। सिरच्छेदके समय पुत्रोंको कारुण्य आर्तनादसे मथुरा नगरी विदीर्ण होती थी और कहती थी कि यह महा घोर पाप हो रहा है। इस महापापसे मथुरापुरीमें अन्धकार छा गया, सूर्यकी गति मन्द हो गई, देवता लोगोंका श्वास बन्द हो गया। सब जीवोंके अन्दर हृदयमें दुःखकी वेदना थी, साधु लोगोंकी आँखोंसे अश्रुधारा निकलने लगी, जिससे पृथ्वी भींगने लगी। मथुरापुरी पापसे भर गई, भयंकर दैत्यलोग मथुरा-

पुरीके चारों तरफ घूम रहे थे। उस समय वसुदेव तथा देवकीकी क्या अवस्था हुई होगी, कौन जान सकता है ? अपने पुत्रोंकी मृत्युरुदनको श्रवण कर देवकी माता मूर्छित होकर जमीनमें गिर पड़ी, और आँखोंसे निरन्तर नीर बहा कर जमीन भीग गई तथा कुररी पक्षीके समान विलाप करने लगीं और सिर भूमिपर ठोकती थीं। उनके दुःखसे पृथ्वीदेवीके साथ सब देवता लोग भी रोने लगे । प्रशान्तात्मा श्रीवसुदेव एकान्तमें श्रीकृष्ण स्मरण कर रहे थे और उनका नाम गाते थे।

फिर देवकी माताके सप्तम गर्भमें वैष्णवधाम श्रीअनन्तदेव आये। माता देवकीको गर्भवती देख कंसासुरने उसके पास पहरा देनेके लिये दुगुनी राक्षसियाँ नियुक्त कर दीं। देवकी माताका यह गर्भ सातवें माहमें आकर्षित होकर वृजमें रोहिणीदेवीमें प्रवेश हो गया । रोहिणी माताको गर्भिणी देख वृजमें श्रीनन्द महाराजने बहुत यत्नसे उनका पालन किया। पश्चात् श्रावण पोर्णमासीके दिन मध्याह्न में महावन गोकुलमें रोहिणी माताके गर्भसिन्धुसे श्रीबलरामने दर्शन दिया। तब देवता लोग आनन्द से दुन्दुभीके साथ पुष्प वृष्टि करने लगे।

सप्तमे वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ।
गर्भो बभुव देवक्या हर्षशोकविवर्द्धनः ॥

भा. १०।२।५

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ।
तत् सन्निकृष्य रोहिण्या उदरे सन्निवेशय ॥

भा. १०।२।८

श्रीमद् शुकदेव गोस्वामीकी वाणीसे यह मालूम पड़ता है कि देवकीके पहिले छः गर्भ प्राकृत छः विषय स्वरूप हैं। जब तक इन छः जड़ विषयोंका मनसे नाश नहीं होता, तब तक हृदय शुद्ध नहीं होता। भगवद् इच्छासे कालरूपी कंस द्वारा उन छः जड़ विषयोंका नाश हो जानेसे हृदय शुद्ध हो गया। शुद्ध हृदयमें पहिले शुद्ध सत्वस्वरूप वैष्णव-धाम श्रीअनन्तदेवका प्रवेश हुआ। पश्चात् भगवान् श्रीवासुदेवका आविर्भाव हुआ । श्रीअनन्तधाम भगवत् यशः, श्रवण, कीर्तन, परिचर्या, शय्या आदि स्वरूप हैं। उनकी कृपासे भक्ति वृद्धि होती है। एवं उसी भक्तिरस द्रवित हृदयमें भगवानका निवास होता है। भक्तिसे ही भगवानका दर्शन होता है। देवकी देवी श्रद्धास्वरूपा हैं और श्रीवसुदेव ज्ञान विज्ञानयुक्त शुद्ध सत्वात्मक विग्रह हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—ये षट्रिपु और षट् विषय हैं। साधकके हृदयमें विज्ञानविद् भागवत पुरुषके संगसे ये सब अनर्थ दूर होते हैं और शुद्ध हृदयमें गुरुरूपी अनन्तधामका संग होता है। तब अनुक्षण भगवद् श्रवण—कीर्तन करते-करते स्वयं भगवानका नाम, रूप, गुण, लीला और परिकरके साथ हृदयमें दर्शन होता है। संसार कारागार है, काल कंसरूप है, जीवका सुख-दुःख इस कालका कारण है।

गोकुल नगरमें श्रीरोहिणीदेवीके गर्भसे श्रीबल-रामका अविर्भाव हुआ। उधर श्रीयशोदाजी भी गर्भवती दिखाई पड़ीं। तब सब गोपगोपी आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठे । श्रीनन्द महाराज देवद्विजोंको प्रतिदिन बहुत दान दक्षिणा देने तथा अतिथिसेवा देव-पूजा इत्यादि करने लगे। श्रीनन्दमहाराजकी

संपत्ति कितनी है, कौन कह सकता है ? जहाँ साक्षात् स्वयं भगवान अवतीर्ण हो रहे हैं वहाँ श्री लक्ष्मी समस्त विभूतियोंके साथ प्रकट होती हैं। भगवान जब अवतीर्ण होते हैं, तब उनके पहले उनके धाम, परिकर अवतीर्ण होते हैं, पश्चात् वे स्वयं अवतीर्ण होते हैं। भगवान जिस प्रकार विशुद्ध स्वरूप हैं, उसी प्रकार धाम परिकर भी विशुद्ध स्वरूप हैं। प्राकृतकाल वहाँ प्रवेश नहीं कर सकता। इस धामको अप्राकृत कहकर श्रीमद् शुकदेव गोस्वामीने वर्णन किया है। सोलह कोस वृन्दावनमें अनन्त कोटि वैकुण्ठधाम विराजमान हैं। वहाँ शत-कोटि गोपियोंके साथ ब्रह्माके शत रात्रिके समय तक भगवानने रासलीला की है।

कृष्णेर महिमा बहु केवा तार ज्ञाता।
वृन्दावन-स्थानेर आश्चर्य विभुता॥
षोल क्रोश वृन्दावन,-शास्त्रेर प्रकाशे।
तार एक देशे वैकुण्ठाजाण्डगण भासे॥

(श्रीचैतन्य चरितामृत मध्यलीला २१ प. २८-२९)

(क्रमशः)

—श्रीहरिकृपादास ब्रह्मचारी, भक्ति शास्त्री

श्रीमद्भागवतके पात्रोंकी अनुक्रमणिका

[आचार्य वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी एम. ए. साहित्यरत्न]

(इ)

इक्ष्वाकु—१।१२।१९, ८।१३।२, ९।१।३, १२; ९।२।२, ९।६।४,७; ९।१२।९, १६; ९।१३।१, १०।५२।१, १२।१२।२१।

इडस्पति—४।१।७

इध्म—४।१।७

इध्मजिह्व—५।१।२५, ३३; ५।२०।२

इन्दिरा—१०।३१।१

इन्दु—३।८।२१, ३।२१।५१, ६।६।२, २३; १०।१९। ३२।

इन्दुमती—९।६।३८

इन्द्र—१।१५।८, २।१।२९, २।७।४८, २।१०।२४, ३।६।२१, ३।२१।५१, ३।२५।४२, ४।४।२२, ४३; ४।१४।२६, ४।१५।१५, ४।१६।८, २२; ४।१८।१५, ४।१९।१०, १५, २३, २४, २६, ३०, ३३; ४।२४।५, ५।४।३, ८; ५।२०।३०, ५।२१।७, ९; ५।२४।१८, ३०; ६।६।३६, ६।७।२, ८, १०, १९; ६।९।११, ६।१०।१, १३, २२, २७; ६।११।३, १०, ११, १२; ६।१२।४, ६, १८, २३, २४; ६।१३।२, ३, ४, ११, १६, २१; ६।१८।७, १९, २०, २६, ३७, ४३, ४५, ५६, ६३, ६७, ६८, ६९, ७७; ७।१।१, ७।७।६, ११; ७।१२।२६, ८।१।२०, २४; ८।५।३, ८, १६, १९; ८।८।३, ८।१०।२८, ५३; ८।१३।४, १२, १९, २५, २८, ३१; ८।१४।७, ८।१५।३, २३; ८।१७।१४, ८।२०।२६, ८।२२। ३१, ८।२३।४, २४, २५; ९।२।२८, ९।३।२५,

९।६।१४, ३१, ३३; ९।७।१७, २३; ९।१०।४८, ९।१३।२, ९।१४।२६, ९।१७।१३, ९।२२।२७, १०।४।३६, १०।२४।८, १२, १५; १०।२५।१, २, १४, १५, २४; १०।२७।२३, १०।३६।१०, १९; १०।३७।१६, १०।४३।२६, १०।५९।२, १०।६६।२, १०।६८।२८, १०।७२।२५, १०।७४।१३, १०।७७।६, १०।८९।६४, ११।४।७, १६; ११।६।२, ११।१७। ४६, ११।१६।१३, १२।६।१७, २०, २२; १२। १३।१।

इन्द्र (सूर्य)—१२।११।३७

इन्द्रद्युम्न—८।४।७, ११

इन्द्रध्वज—१०।४४।२३

इन्द्रप्रमक—१।१९।९

इन्द्रप्रमिति—१२।६।५४, ५५

इन्द्रलोक—५।२३।१, ५

इन्द्रवाह—९।६।१२

इन्द्रसावर्णि(मनु)—८।१३।३३

इन्द्रसेन—६।६।५, ८।२०।२३, ८।२२।१३, ३३; ९।२।१९, २०; १०।८५।३८, ५२।

इन्द्रस्पृक्—५।४।१०

इन्द्राणी—९।१८।३

इरावती—१।१६।२, ३।१२।१३।

इरावन्त—९।२२।३२

इल—१०।६।२२

इलविला—४।१।३६, ९।२।३१।

इला—२।३।५, ३।१२।१३, ४।१०।२, ६।६।२६, २८; ९।१।१६, २२; ९।१४।१५, ९।२४।४५, ४९; ११।४।१८, १२।१२।२२।

इलावर्त—५।४।१०

इलावृत—५।२।१९

इलिबल—६।१८।१५, ७।२।४, ८।७।१४, ८।१०।२०, ३२; १०।७८।३८।

इषुमान्—९।२४।४१

इष—४।१३।१२

(ई)

ईश (कृष्ण)—१०।७२।४

ईश (विष्णु)—६।१५।४, ६।१६।३८।

ईश (शिव)—५।१८।२२, ६।३।१४, ६।१३।२।

ईशान—८।४।१, १०।२।४२, १०।३।२६, १२।१०।१६।

ईशानी—१०।२।१२

ईश्वर—५।१७।१८, ५।१८।२३, २६; ५।२०।२८, ३७; ५।२२।११, ५।२३।२, ५।२६।१७, ४०; ६।४।३४, ६।९।२५, ६।१२।१२, ६।१७।२९, ६।१८।३५।

(उ)

उग्र—६।६।१७

उग्र (रुद्र)—९।१०।१०

उग्रदंष्ट्रा—५।२।२३

उग्रसेन—१।१।१६, ३।२।२२, ९।२४।२१, २५; १०।१।३०, ६९; १०।२।४, १०।३।२८, १०।३६। ३४, १०।४४।३३, १०।४५।१२, १०।६६।७, १०।६८।१३,२१, ३४; १०।७९।२९, १०।८२।२२, १०।८४।५९, ६८; ११।३१।३५, १२।११ ३८।

उग्रसेन (परीक्षित् पुत्र)—९।२२।३५

उग्रश्रवा—३।२०।७, ९।२१।२९।

उच्चैः श्रवा—८।८।३, ११।१६।१८;

उच्चवृत्ति (मुद्गल)—१०।७२।२१

उडुप (चन्द्र)—६।१४।३१

उडुराट्—९।१४।१४, ११।६।३६।

उडुराज--१०।२९।२, १०।७०।१८ ।
उतथ्य--१।१९।९, ४।१।३४ ।
उत्कच्--७।२।१८
उत्कल—४।१०।२, ४।१३।६, ८।१०।२१, २३; ९।१।१४ ।
उत्कल (असुर)--६।१०।२०
उत्कला--५।१५।१५
उत्तम—४।८।९, १९; ४।९।२३, ४१, ४८; ४।१०।३, ५।१।२८, ८।१।२३, २७ ।
उत्तम: श्लोक-४।२०।२५, ४।२१।४९, ५।१।३५, ५।१२।१३, ५।१४।४३, ६।२।१८, ६।११।२७, ६।१६।३२, ६।१९।१४, ७।४।४२, ८।१२।४६, १०।१।४, १०।२३।२०, १०।८०।२, १२; ११।३०।३५ ।
उत्तम: श्लोक (मौलि)—४।१२।१७
उत्तम: श्लोक (हरि)—९।९।४५, ९।११।७, ९।१६।१, १२।६।४, १२।१२।५० ।
उत्तर—१।१६।२
उत्तरा—१।८।८, १।१२।१, १।१३।१४, ३।३।१७, ५।१३।२४, ९।२२।३३ ।
उत्तानबर्हि—९।३।२७
उत्तानपाद—३।१२।५५, ३।१४।६, ३।२१।२, ३।२२।९, १८; ४।१।९, ४।८।७, ८; ४।९।६५, ४।१२।३०, ३८; ४।२१।२८, ४।३१।२६ ।
उत्सर्ग—६।१८।६
उदक्सेन—९।२१।२६
उद्गाता—५।१५।५
उद्गीथ—५।१५।६, १०।८५।५१
उद्ग्रायुध—९।२१।२९
उदावसु—९।१३।१४
उद्धव—१।८।७, १।१०।१८, १।१४।३२, २।७।४५, ३।१।२४, ३।२।६, ३।४।२३, २८, ३०, ३१, ३३; ४।७।६०, ९।२४।६७, १०।४६।१, २, ७, २९, ४९; १०।४७।९, २२, ३८, ५३, ५५, ५७, ६८; १०।४८।४, १०।६८।१६, १०।६९।२०, २७; १०।७०।१५, ४५, ४७; १०।७१।१, ११; १०।७२।१५, १०।८४।६८, ११।६।४०, ४१, ५०; ११।७।१३, ११।१०।३५, ११।११।३, २४, २६, ३५, ४८; ११।१२।१४, १६; ११।१३।८, १५, २१; ११।१४।१, १९, २०, ३१; ११।१५।२०, ११।१६।१, ९; ११।१७।१, ९; ११।१८।४५, ११।२९।५,७, ८, २८, ४५; ११।२०।१, १०; ११।२२।१, २६, ३५, ५७; ११।२३।१, ४, ११; ११।२५।६, १९; ११।२७।१, ६, १३; ११।२९।१, ७, २०, २९, ३७, ४१; ११।३०।१, १२।१२।८, ३६, ४२; ।
उन्नति—४।१।४८, ५० ।
उपगुप्त—९।१३।२४
उपगुरु—९।१३।२४
उपदानवी—६।६।३३, ३४;
उपदेव—९।२४।१८, २२ ।
उपदेवा—९।८४।२३, ५१ ।
उपनन्द—९।२४।४८, १०।६३।३ ।
उपबर्हण—७।१५।६, ९ ।
उपरिचरवसु—९।२२।६
उपश्लोक—८।१३।२१
उपानन्द—१०।११।२२
उपेन्द्र—५।२०।२४, ६।६।८, ८।२२।१९, ८।२३।२३, २५; १०।३।४२, १०।६।३३ ।
उमा—२।३।७, ३।१२।१३, ६।१७।३६, ८।७।३३,

८।१२।१७, २२; ८।१८।१७, ९।१।२५, १२।१०।४, १५ ।
उराङ्कविद्विट्—४।२०।२२
उरुवल्क—९।२४।४९
उरुगाय—३।१५।४५, ३।९।११, ६।३।२६, ७।९।४९, १०।६।२३ ।
उरुक्रम—४।१२।१८, ५।१।३५, ६।६।३९, ६।१८।८, ७।५।३२, ७।११।१, ८।२०।२४, ३३, ३४; ८।२१।४, ८।२३।२८, १०।६।२२, १०।३०।१०, १०।४४।१५ ।
उरुविक्रम—८।२३।२९
उरुश्रवा—९।२।२०, १०।३८।२१ ।
उर्वशी—९।१३।६, ९।१४।१५, २६, २७, ४०, ४१, ४२, ४४, ४५, ४७; ९।१५।१, ९।२१।३५, ११।४।१५, ११।२६।१४, १२।११।४१ ।
उलूपी—९।२२।३२
उल्बण—४।१।४०
उल्मुक—४।१३।१६, १७ ।
उशना—४।१।४४, ५।१।३४, ५।२२।१२, १३; ५।२३।७, ६।७।१८, ३८; ८।१०।३३, ८।११।४७, ४८; ८।१६।२९, ८।२३।३, १८; ९।१८।३०, ९।२३।३३ ।
उशिक—९।२४।२
उशीनर—९।२३।२, ३ ।
उष्णगु (सूर्य)—१०।७६।१७
उर्जित—९।२३।२७

(ऊ)

ऊरु—८।१३।३३
ऊरुक्रिय—९।१२।१०
ऊषा—६।६।१९, १०।६२।१, १०, १२, १९, २४, ३३ ।
ऊर्ज—४।१३।१२
ऊर्जकेतु—९।१३।२२
ऊर्जस्तम्भ—८।१।२०
ऊर्जस्वती—६।६।१२, ५।१।२४, ३४ ।
ऊर्जा—४।१।३९
ऊर्ण (यक्ष)—१२।११।४२
ऊर्णा—५।१५।१४, १०।८५।३७ ।
ऊर्ध्वग—१०।६१।१५
ऊर्ध्वबाहु—८।५।३

(ऋ)

ऋचीक—९।१५।५
ऋजु—९।२४।५४
ऋत—४।१।४९, ४।१३।१६, ९।१३।२५ ।
ऋतधामा—८।१३।२८, ९।२४।४४ ।
ऋतध्वज—३।१२।१२, ६।१५।१५, ९।१७।६,
ऋतम्भर (विष्णु)—६।१३।१७
ऋति—५।१५।६
ऋतुसेन (गन्धर्व)—१२।११।४१
ऋतुपर्ण—९।९।१७
ऋतेयु—९।२०।४, ६ ।
ऋभु—४।४।३३, ४।८।१, ६।७।२, ६।१५।१२ ।
ऋक्ष—९।२।१९, ९।१२।१९, ४३; ९।२२।४, ११; ११।१२।६ ।
ऋषभ—१।१४।३१, ५।४।२,३, ८, १३, १७, १८; ५।५।१९, २८, ३५; ५।६।७, १६, १९; ५।१५।१, ६।८।१८, ९।२२।७, १०।३३।२१, ११।२।१५, ११।४।१७, १२।१२।१५ ।
ऋषभ (असुर)—६।१०।१८

ऋषभ (इन्द्र पुत्र)—६।१८।७
ऋषभ (हस्ती)—५।२०।३९
ऋषभदेव—८।१३।२०
ऋषयः—५।२२।१७
ऋषिकुल्याः—५।१५।६
ऋष्यशृङ्ग—९।२३।८, ११।८।१८ ।

(ए)

एकत—१०।८४।५
एकचक्र—६।६।३१
एडविडि—९।८।४२

(ऐ)

ऐरावत—६।११।११, ८।८।४, ११।१६।१७ ।
ऐल—९।१४।१, ३२; ९।१५।१, ११।२६।४, ७; १२।१२।१५ ।
ऐलविल—४।१२।१९

(ओ)

ओघवती—९।२।१८
ओघवान्—९।२।१८
ओज—१०।६१।१५
ओजस्वी—१०।२२।३१
ओड्र—९।१३।५

(औ)

औत्तरेय—१।१७।४०
औत्तानपादि—४।८।८२, ४।१०।१३, ३०; ४।११।६, ४।१२।७, ५।१७।२, ५।२३।१ ।
और्व—१।१९।१०, ९।८।३, ७, ३०; ९।२३।२८ ।
औशीनर—१।१२।२०
औशनसी—९।१८।२०, ३१ ।

प्रचार-प्रसङ्ग

अक्षय तृतीयाका अनुष्ठान

गत १८ मधुसूदन, २८ वैशाख, १० मई को अक्षय तृतीयाके दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका प्रतिष्ठा-दिवस समितिके सभी मठोंमें मनाया गया। मूल मठमें श्रीश्रील आचार्यदेवकी उपस्थितिमें यह उत्सव बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। उक्त दिवस शामको एक सभाका आयोजन किया गया, जिसमें श्रीहरिकीर्त्तनके माध्यमसे श्रीसमितिके उद्देश्य तथा कार्यों पर प्रकाश डाला गया। इसी दिन त्रिभुवन पावन सलिला भगवत् पादपद्मसम्भूता गङ्गाजीका अवतरण हुआ था और सत्ययुगका भी आरम्भ हुआ था।

जगद्गुरु श्री श्रीमद् सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव उत्सव

पिछले वर्षोंकी तरह इस वर्ष भी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी शाखामठोंमें २२ आषाढ़, ६ जुलाई को आधुनिक युगमें श्रीरूपानुग धाराको पुनः इस जगतमें प्रबल रूपसे प्रवाहित करनेवाले सप्तम

गोस्वामी श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर की तिरोभाव तिथि बड़े समारोह के साथ मनायी गयी। श्री उद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचूडामें यह उत्सव श्रीश्रील आचार्यदेवकी उपस्थितिमें सम्पन्न हुआ। उक्त दिवस शामको एक विराट सभाका आयोजन हुआ, जिसमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त वामन महाराज अन्यान्य त्रिदण्डिचरण और ब्रह्मचारियोंने भाषण दिये। सबसे अन्तमें श्रील आचार्यदेवने श्रील ठाकुरके अलौकिक जीवन चरित्र और उनकी अप्राकृत शिक्षाओंके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए सार-गर्भित और भावपूर्ण भाषण दिया। सभाके आदि और अन्तमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुरजी द्वारा रचित पदावलियोंका कीर्त्तन किया गया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें भी उक्त दिवस सभाका आयोजन किया गया था। सबेरे श्रील भक्ति विनोद रचित शरणागति आदि का कीर्त्तन, उनकी जीवनी की आलोचना आदि हुए। शाम को आयोजित सभामें त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज तथा अन्यान्य वक्ताओंने श्रील भक्ति-विनोद ठाकुरके जीवन चरित्र और शिक्षाओं पर प्रकाश डाला।

श्रीश्री जगन्नाथदेवजीका रथयात्रा-महोत्सव

श्री उद्धारण गौड़ीय मठ चुचुँडा में गत २२ आषाढ़, ७ जुलाई से २२ आषाढ़, १७ जुलाई तक श्रीश्री जगन्नाथदेवजी का रथयात्रा-महोत्सव बड़े धूमधामसे सम्पन्न हुआ। इस वर्ष भी श्रील आचार्यदेव की उपस्थितिके कारण उत्सवमें विशेष उत्साह रहा। २३ आषाढ़को गुण्डिचा मार्जन, २४ आषाढ़ को रथयात्रा, २८ आषाढ़को श्रीहेरा-पंचमी या श्रीलक्ष्मी विजय और ३२ आषाढ़को पूर्ण रथयात्रा के महोत्सव सम्पन्न हुए। उत्सवमें आयोजित सभाओंमें श्रील आचार्यदेव, विभिन्न त्रिदण्डिचरणों तथा ब्रह्मचारियों के प्रवचन कीर्त्तनादि हुए हैं। छाया चित्र द्वारा श्रीगौरलीला और श्रीकृष्ण लीलाके विभिन्न निगूढ़ शिक्षाओं पर प्रकाश डाला गया। निमंत्रित अनिमंत्रित सभी व्यक्तियोंको प्रसाद वितरण किया गया।

श्रील सनातन गोस्वामीका विरहोत्सव

श्रील गौड़ीय वेदान्त समितिके सभी शाखा मठोंमें गत ४ श्रावण, २१ जुलाईको पूर्णिमाके दिन श्रील सनातन गोस्वामीजी का तिरोभाव महोत्सव मनाया गया। विशेष कर व्रजमण्डलमें यह उत्सव बड़े समारोहके साथ प्रति वर्ष ही मनाया जाता है। इस दिन व्यासपूजा मनाने की रीति चली आ रही है। इसी दिन चातुर्मास्य प्रारम्भ करने की प्रथा है।

श्रीकेशवजी गौडीय मठमें उक्त दिवस श्रील सनातन गोस्वामीके अलौकिक जीवन तथा अप्राकृत शिक्षाओंके सम्बन्धमें विशद रूपसे आलोचना की गई। सभाके अन्तमें श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महा-राजने बड़े ही ओजस्वी भाषामें वक्तृता प्रदान किया।

श्रीश्रीझूलनयात्रा महोत्सव

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें

अन्यान्य वर्षोंकी तरह इस वर्ष भी गत ३० श्रावण १६ अगस्त, बुधवार, एकादशीसे लेकर ३ भाद्र, २० अगस्त, रविवार, पूर्णिमा तक श्रीराधाविनोद विहारीजीका झूलन महोत्सव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें बड़े समारोहके साथ मनायागया है। सभा-मण्डप, हिंडोला और श्रीमन्दिर नाना प्रकार की आलोक मालाओं, रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्रों, कदली वृक्षों और आम्रपल्लवोंसे सुसज्जित किये गये थे। नित्य नई-नई झाँकियाँ, विराट हरिसंकीर्त्तन, प्रवचन आदि महोत्सवके प्रमुख आकर्षण थे। समागत व्यक्तियोंके निकट हरिकथाका प्रचुर परिवेशन किया गया।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें

समितिके मूल मठ, श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें यह महोत्सव विराट रूपमें सम्पन्न हुआ है। मठके नवनिर्मित नाट्य-प्रांगण तथा मन्दिरमें श्रीश्रीराधाविनोद बिहारीजीके झूलोंकी सुन्दर-सुन्दर झाँकियाँ प्रस्तुत की गईं थीं। ये सभी झाँकियां विद्युतके द्वारा चालित होनेके कारण बड़े ही आकर्षक और मनोहर लगती थीं। प्रतिदिन शामको दर्शकोंका अपार भीड़ झूलनकी झाँकियों का दर्शन करने आया करतीं। विभिन्न वक्तागण प्रतिदिन हरिकथा द्वारा श्रोताओंको आनन्दित करते थे।

श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाममें

समितिके अन्यान्य मठोंमें झूलन महोत्सव बड़े धूमधामसे मनाया गया है। श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाममें श्री श्रील आचार्यदेवके निर्देशानुसार त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त पर्यटक महाराजकी देखरेखमें यह उत्सव मनाया गया। इस उत्सवमें स्थानीय एवं निकटवर्त्ती स्थानोंके बहुतसे गण्यमान्य सज्जनोंने भाग लेकर समितिके सदस्यवर्गको आनन्दित और उत्साहित किया है अन्तिम दिनके उत्सवमें सर्वसाधारणको महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीबलदेवाविर्भाव

गत ३ भाद्र, २० अगस्त रविवार पूर्णिमाके दिन श्रीश्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव तिथि समितिके सभी शाखा एवं मूल मठमें उपवास, कीर्त्तन, भाषण और प्रवचनके द्वारा पालित हुई है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा और श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें विशेष धर्म सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें श्रीबलदेव तत्त्वकी विशद रूपमें आलोचना की गई।

श्रीश्रीजन्माष्टमी व्रत और श्रीश्रीनन्दोत्सव

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत १० भाद्र, २७ अगस्त रविवारको समितिके सभी मठोंमें श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रतोपवास और दूसरे दिन

सोमवारको श्रीनन्दोत्सव विराट समारोहके साथ सम्पन्न हुए हैं।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें

यहाँ यह उत्सव श्री श्रील आचार्यदेवके उपस्थितिमें विराट समारोह तथा विशेष उल्लास के साथ सम्पन्न हुआ है। इस उपलक्ष्यमें यहाँ श्रीकृष्णकी जन्मलीला प्रदर्शनीका बड़ा सुन्दर आयोजन किया गया था। यह प्रदर्शनी ११ सितम्बर श्री श्रीराधाष्टमी तिथि तक खुली रही। प्रतिदिन हजारों दर्शक तथा श्रोतागण आया करते थे। प्रदर्शनीमें कृष्णकी विविध प्रकारकी मनोहर लीलाओंको सुन्दर ढङ्गसे प्रस्तुत किया गया। ये सभी लीलाएँ विद्युत शक्ति द्वारा परिचालित होती थीं। इस अवसर पर परमाराध्यतम श्रील आचार्यदेव और विभिन्न त्रिदण्डिचरणोंके भाषण और प्रवचन हुए। श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके दिन सबेरे से १२ बजे रात तक श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका पारायण हुआ। दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सवके अवसर पर हजारों व्यक्तियोंको महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें

पिछले वर्षोंकी तरह इस वर्ष भी श्रीजन्माष्टमी का व्रतोपवास और नन्दोत्सव बड़े समारोहके साथ मनाया गया। श्रीमन्दिर और नाट्य मन्दिरको आम्र पल्लव, कदली वृक्ष, रङ्ग-बिरङ्गे तोरण और वस्त्रों द्वारा आकर्षक रूपसे सजाया गया था। सवेरे से १२ रात तक श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका पारायण तथा हरिकीर्त्तनादि हुए। श्रीपाद रास-बिहारी ब्रह्मचारी, श्रीपाद कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीपाद कृष्णस्वामी ब्रह्मचारी आदिके उपदेश पूर्ण भाषण हुए। दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सवके अवसर पर उपस्थित भक्तवृन्दोंको सुस्वादु महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीराधाष्टमी-व्रतोत्सव

गत २५:भाद्र, ११ सितम्बर, सोमवारको समिति के सभी मठोंमें श्रीराधाष्टमीका महोत्सव कीर्त्तन, पाठ, भाषण और प्रवचनके माध्यमसे बड़े समारोह के साथ मनाया गया है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा तथा श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें उक्त दिवस विशेष सभाका आयोजन किया गया था जिसमें विभिन्न वक्ताओंने श्रीराधातत्त्वके सम्बन्धमें शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया।

श्रील सच्चिदानन्द भक्ति विनोद ठाकुरका आविर्भाव महोत्सव

गत ३० भाद्र, १६ सितम्बर शनिवारको समिति के सभी शाखामठोंमें ॐ विष्णुपाद श्रील सच्चिदानन्द भक्ति विनोद ठाकुरका आविर्भाव महोत्सव हरिकीर्त्तनके माध्यमसे बड़े समारोहके साथ मनाया गया है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा तथा श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें सबेरे तथा शामको श्रील भक्ति विनोद ठाकुर रचित कीर्त्तनों और पदावलियोंका विशेष रूपसे कीर्त्तन किया गया और उनकी अप्राकृत शिक्षाओं तथा अलौकिक जीवनी पर बड़े ही मार्मिक रूपसे आलोचना की गई।

विभिन्न स्थानोंमें प्रचार

पूज्यपाद विदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज साथमें कुछ ब्रह्मचारियोंको लेकर बिहारके अन्तर्गत दूमका जिले तथा संथाल परगना में प्रचार कर रहे हैं।

पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डि महाराज कुछ ब्रह्मचारियोंको लेकर बंगाल के २४ परगना जिलेमें तथा मेदिनीपुर जिलेमें प्रचार कर रहे हैं।

पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पयटक महाराज आसाम प्रदेशके शिलांग, शिलचर और त्रिपुरा राज्यके आगरतला, धर्मनगर, करीमगंज आदि स्थानोंमें विपुल रूपसे प्रचार कर दलबल सहित श्रीधाम नवद्वीप प्रत्यावर्त्तन किये हैं।

—प्रकाशक

पत्रिकाके प्रेमियोंसे नम्र-निवेदन

प्रार्थना है कि हमारी 'श्रीभागवत-पत्रिका' के बारह वर्ष पूर्ण हो गये हैं। इस पत्रिका का एकमात्र उद्देश्य और लक्ष्य यही है कि अधिकसे अधिक व्यक्ति परमार्थ की ओर रुचि बढ़ाये और अपने मानव जीवनको सार्थक बनायें। यह कार्य सज्जन एवं श्रद्धालु व्यक्तियों द्वारा ही सम्भव है। वे ही परमार्थ और मानव-जीवनका अपार मूल्य समझ सकते हैं। हमारे प्रेमी पाठक इसके आदर्श-स्वरूप हैं।

वर्त्तमान समयमें, जब सब ओर केवल अभाव और संकट ही नजर आ रहे हैं, अर्थ ही प्रधान सहायक वस्तु हो गया है। विशेषकर किसी सत्-संस्थाके सुचारु-संचालन तथा सत्-कार्य को सुष्ठु रूपसे सम्पन्न करनेके लिए तो कहने की बात ही नहीं है। हमारी पत्रिका का सुचारु संचालन पाठकों और सज्जनोंकी सहानुभूति पर ही निर्भर है। अतएव हमारा पत्रिका के प्रेमियोंसे यही नम्र निवेदन है कि वे यथाशीघ्र पत्रिका की भिक्षा भेजकर कृतार्थ करें और श्रीपत्रिका के कुछ नये ग्राहक बनाकर समितिके सदस्यवर्गको आनन्दित तथा उत्साहित करें।

कुछ आवश्यक कारणोंसे दो माह की पत्रिकाएँ एक साथ निकाली जा रही हैं। पाठकगण इस विलम्ब के लिए हमें क्षमा करें।

श्रीकुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी
(प्रकाशक)

छप गया !

छप गया !!

जैवधर्म

वर्षोंसे पाठक जिस ग्रन्थकी बड़ी उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे, वह "जैवधर्म" (हिन्दी संस्करण) प्रकाशित हो गया है।

यह ग्रन्थ वर्तमान वैष्णव जगतमें विशुद्ध भक्ति-भागीरथीकी पुनीत धाराको पुनः प्रबल वेगसे प्रवाहित करनेवाले, विभिन्न भाषाओंमें भगवद्भक्ति सम्बन्धी सैकड़ों ग्रन्थोंके रचयिता श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रिय पार्षद सप्तम गोस्वामी श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा बंगला भाषामें लिखित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ—'जैवधर्म' का हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक हैं—'श्रीभागवत पत्रिका' (मासिक परमार्थिक पत्र) के सम्पादक—त्रिदण्डी स्वामी भक्ति वेदान्त नारायण महाराज।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत अखिल भारतीय गौड़ीय मठोंके संस्थापक आचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा संपादित होनेसे इस ग्रन्थकी उपादेयता और भी बढ़ गयी है।

इसमें अखिल विश्वके निखिल जीवोंके सार्वत्रिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनिक नित्य और सनातन धर्म—जैवधर्म (जीवका धर्म) का हृदयग्राही एवं साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। इसमें वेद-वेदान्त, श्रीमद्भागवत आदि पुराण, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, पंचरात्र एवं श्रीगौड़ीय-गोस्वामियोंके 'भक्तिरसामृत-सिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, षट्-सन्दर्भ, श्रीचैतन्यचरितामृत आदि सद्ग्रन्थोंका सार सहज सरल और रुचिकर भाषामें उपन्यास-प्रणालीमें गागरकी भाँति भरा हुआ है।

हिन्दी भाषामें श्रीगौड़ीय-वैष्णवधर्म और उसके सिद्धान्तोंका यह सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक ग्रन्थ है। हिन्दी साहित्यमें अब तक वैष्णव धर्मके, विशेषतः श्रीगौड़ीय वैष्णव धर्मके परमोच्च दार्शनिक सिद्धान्तों एवं सर्वोत्कृष्ट उपासना पद्धतिका बोध करनेवाले ऐसे अपूर्व सुन्दर और सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थका सर्वथा अभाव था। यह 'जैवधर्म' हिन्दी जगतकी इस अभावको पूर्ति कर दार्शनिक एवं धार्मिक जगतमें, विशेषतः वैष्णव जगतमें युगान्तर उपस्थित करेगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अतः पाठकोंसे हमारा विशेष अनुरोध है कि वे इस ग्रन्थरत्नका संग्रह कर अवश्य ही अध्ययन करें।

सोलह पेजी २०×३० आकारके ८०० पृष्ठोंकी सजिल्द पुस्तक। उत्तम कागज पर सुन्दर छपाई मूल्य केवल दस रुपये।

मँगाने का पता—

श्रीकेशवजी गोड़ीय मठ

पो०—मथुरा (उ. प्र.)